मगध की जल व्यवस्था

नेहरू युवा केन्द्र एवं यु.एन.एड्स की संयुक्त परियोजना

"एच.आई.वी. एवं अन्य यौन संक्रमण के विरुद्ध ग्रामीण युवाओं
के सशक्तिकरण एवं नेतृत्व विकास" द्वारा जनचेतना
एवं समृद्धि के लिए प्रकाशित

एच आई वी/ एड्स के संक्रमण से कैसे बचा जाए

नेहरू युवा केन्द्र संगठन एवं यु.एन.एड्स की संयुक्त परियोजना

" एच.आई.वी. एवं अन्य यौन संक्रमण के विरूद्ध ग्रामीण युवाओं का सशक्तिकरण एवं युवा नेतत्व का विकास " द्वारा जनचेतना एवं समृद्धि के लिए प्रकाशित

मगध की जल व्यवस्था

डॉ. रवीन्द्र कुमार पाठक
डॉ. प्रमिला पाठक

मगध जल जमात

मगध की जलव्यवस्था

लेखक

डॉ. रवीन्द्र कुमार पाठक
डॉ. प्रमिला पाठक

प्रकाशक

नेहरू युवा केन्द्र संगठन
गया, बिहार
फोन नं० : 0631 – 2223591

प्रकाशन सौजन्य
यूएनएड्स परियोजना

प्रथम संस्करण : सन् 2007
प्रकाशनाधिकार लेखकाधीन

मुद्रक :
स्टैण्डर्ड प्रिन्टर्स
शहीद रोड, गया

नशा एवं एड्स की ओर क्यों जाएँ

जल समस्या से बेरोजगारी

बेरोजगारी से घर-परिवार छोड़ पलायन

परिवार रहित जीवन में असुरक्षित यौन सम्बंध का संकट

और उस तनाव से

मादक द्रव्यों का सेवन एवं एड्स का खतरा

आइये इसें पलटें

सिंचाई की समुचित व्यवस्था से रोजगार में वृद्धी

उससे पलायन पर रोक

उससे सुखी सुरक्षित पारिवारिक जीवन

खतरनाक नशा एवं एड्स से बचाव

यही है हमारा सुझाव।

नेहरू युवा केन्द्र संगठन

एवं

मगध जल जमात

विषय सूची

अध्याय एक : परिस्थिति

घटनाएँ 1
बनावट एवं चौहद्दी 3
मगध की मिट्टी 4
ग्रेनाइटिक 4
क्वार्जाइटिक 5
मिश्रण 5
भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण एवं केन्द्रीय भू-जल बोर्ड के निष्कर्ष 6

अध्याय दो : सिंचाई व्यवस्था

परंपरागत सिंचाई व्यवस्था 9
पइन 9
आहर 11
ठाट एवं दह 12
पोखर/पोखरी 12
कुआँ 13
पानी उलीचने के छोटे उपकरण - सैर, दोन, लाठा-कुड़ी, रहट आदि 13
उदकार्गला : परंपरागत जल विद्या और वराह मिहिर 13
मगही समाज 17
जल की सामाजिक व्यवस्था 18
बाभन, खारा पानी और जलाशय 18
तालाबों के गाँव एवं नगरियाँ 19
मगध में जलाशयों के नाम एवं निहितार्थ 19
गोआम 19
गोहार 20
जल के उपयोग की परंपरागत नीति 20

अध्याय तीन : नए चलन एवं नई प्रणालियाँ

सोन बैराज एवं सोन कमांड एरिया 21

लघु सिंचाई योजना, छोटे बराज, वीयर एवं छोटी नहरें 21
छोटे बराज के स्वयं सोने वाले फाटक 21
सिंचाई शुल्क 22
नलकूप 22
नलकूप निर्माण संबंधी गलत धारणाएँ एवं तथ्य 24
भौम जल (भूमिगत जल) खोजने की विधियाँ 28
वर्तमान जल संकट की सामाजिक जटिलता 30
जल संबंधी गलत नीतियाँ 30
सौंदर्यीकरण या तालाबों का सत्यानाश 32

अध्याय चार : जनाधारित प्रयास

जल समस्या समाधान हेतु जनाधारित प्रयासों के उदाहरण 33
मगध जल जमात : एक परिचय 35
मगध क्षेत्र की जल नीति (प्रस्तावित) 35
मगध जल जमात द्वारा जारी अभियान 35
अधिकारियों का ध्यानाकर्षण तथा परामर्श 36
तालाब उड़ाही अभियान 36
गोष्ठी/सम्मेलन 38

अध्याय पाँच : उपसंहार

नए शोध की आवश्यकता 39
द्वितीय बिहार राज्य सिंचाई आयोग के द्वारा किए गए अध्ययन एवं रिपोर्ट १९९४ की पुनः समीक्षा की आवश्यकता 39
सुझाव - झारखंड के साथ विस्तृत जल समझौता हो 40
भावी कार्यक्रम 40

परिशिष्ट

एक - मगध की जल नीति 41
दो - आँकड़े 41

अध्याय एक : परिस्थिति

घटनाएँ

१. गुलरिया चक टेकारी के पास का गाँव है। १९६७ के अकाल के बाद गाँव के प्रगतिशील किसान एवं स्थानीय समाजवादी नेता श्री सच्चिदानंद प्रसाद के गाँव में नलकूप लगाए गए मात्र २५ फीट की गहराई से खूब पानी निकला। १९८०-९० तक यह जलस्तर सूख गया। आस-पास के खेतों में पानी निकल रहा था, तो हमलोगों को कहा गया कि नया नलकूप लगाने लायक स्थान की तलाश करें। हमलोग उस समय भू-गर्भ जल को खोजने का काम कर रहे थे। हमें सफलता नहीं मिली।

२. अनुग्रहपुरी कॉलोनी, गया शहर की पास कॉलोनी है। यहाँ शहर के धनी-मानी लोग रहते हैं। नेता, उद्योगपति, प्रधानाध्यापक, चिकित्सक आदि से भरी इस कॉलोनी का जलस्तर तेजी से गिरा। वर्ष १९९५ के आस-पास प्रो. रुखैयार के घर के कुएँ में बरसात में पानी मात्र २-३ फीट पर रहता था और गर्मी में मात्र १० फीट पर। २००६ में जलस्तर २०० फीट से नीचे चला गया। किसी तरह गर्मी कटी। पूर्व विधायक श्री महेश सिंह यादव ने ६०० फीट गहरा और ६ इन्च व्यास का ट्यूबवेल बनवाया। बोरिंग के समय पूरे मुहल्ले में पत्थर के चूरों की धूल उड़ती रही। एक बूंद पानी नहीं निकला। ऐसी ही चर्चा हुई कि एक प्रख्यात स्त्री चिकित्सक के ट्यूबवेल की भी वही स्थिति रही। बड़ी मशीनें ग्राहकों की आशा में बैठी रहीं, फिर भी ग्राहक हिम्मत नहीं जुटा सके।

३. कहा जाता है कि फल्गु नदी अंतःसलिला है। फल्गु के पूर्वी छोर पर मानपुर इलाके में सामान्य चापाकल की जगह सिलिंडर वाले चापाकल लगाए गए पश्चिमी छोर पर पत्रकार पंकज जी एवं लोजपा नेता श्री लालजी प्रसाद के घर के पंप से झागयुक्त पानी निकलता है। वकील श्री शिववचन सिंह का पंप फेल हो गया। फल्गु किनारे पंचायती अखाड़ा में सी.पी.आई. नेता कामरेड मसउद मंजर भी काफी चिंतित रहे। देर से ही सही प्रशासन जगा। पूरे शहर में टैंकरों से पानी बाँटा गया, अभूतपूर्व व्यवस्था की गई।

४. बड़की पइन फल्गु नदी से निकलती है। यह शाखाओं सहित लगभग ४० कि. मी. लम्बी है। पहले मकसूदपुर राजघराने की देखभाल में चलती थी। बाद में इसे अन्य पइन कमिटियों ने चलाया। काली मंदिर में सभा हुई। हमलोगों ने बहुत कोशिश की। पइन की उड़ाही नहीं हो सकी। कौन कराए उड़ाही? बिहार सरकार, नए राजा-रानी, पदाधिकारी लोग या कमिटी ? उलझ कर सारा मामला रह गया। मैं ने किसानों से पूछा कि आखिर मामला क्या है ? उत्तर मिल - पाठकजी ! अच्छी वर्षा हो रही थी, थोड़ा-बहुत डीजल पंप सेट चल रहा था तो सब सोए थे। अब जगे तो हैं लेकिन चालाकी नहीं छूट रही कि कोई दूसरा आदमी काम करा दे, चंदा न देना पड़े।

५ अमारुत में इस अकाल में भी धान की अच्छी फसल है। डीजल पंप सेट चल रहा है। किसान पछता रहे हैं। धान की कीमत से ५ गुना अधिक डीजल खेत पी गए अब क्या करें?

६ परैया में झगड़ा है। गरमा खेती सब्जी-गन्ना वगैरह की पटवन हो या न हो? मोटर चलने पर चापाकल सूख जाते हैं। पूर्व जिलाधिकारी राजबाला वर्मा ने तो पाबंदी लगाई थी। यह सरकार ऐसा नहीं कर रही उलटे वह और गहरे नलकूप लगाकर समस्या का समाधान चाहती है।

ऐसा ही हाल लगभग पूरे मगध का है। कहाँ नहीं गया नीचे जल स्तर? सवाल है कि पानी गया कहाँ? इस सवाल का जवाब जानने के लिए जरूरी है कि पानी के आने एवं जाने की बातों को समझा जाय। पानी अर्थात जल और समाज के पानी दोनों को समझना जरूरी है। मगध की धरती का पानी बह रहा है। समाज का पानी जमीन में छुप गया है। समाज के पानी को ऊपर आकर गतिशील होना होगा और धरती के पानी को भीतर ले जाना होगा। रहीम ने कहा भी तो है। "रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।"

जलचक्र की बात सभी समझते हैं। पढ़े-अनपढ़ सभी जानते है कि मेघ समुद्र से पानी लाकर वर्षा करता है। पानी फिर घूमता- टहलता समुद्र में चला जाता है। समुद्र में न सूखा पड़ता है न बाढ़ आती है।

फिर भी यह मनुष्य गजब का उलझा हुआ जीव है। कोई चाहता है समुद्र में पानी वापस क्यों जाए? समुद्र को पानी की क्या कमी पड़ी है? यह हमारे बांधों में रहे, खेतो में जाए इतना ही नहीं जब सेन्ट्रल ग्राउन्ड वाटर बोर्ड वाले ही पर्चा छाप कर कहते हैं कि जमीन के भीतर पर्याप्त जल है तो चिंता किस बात की? उनके गाँव-मुहल्ले का चापाकल तो सूखा नहीं? क्या सच में शहर के चापाकलों का पानी सूख गया? गयां शहर में अब सालों भर हीरा बोरिंग की दर्जनों मशीनें खड़ी रहती हैं। सुना है कि दक्षिण भारत में नलकूप लगाने पर रोक है। पता नहीं सरकारें भी क्या-क्या कानून बनाती हैं।

मगध क्षेत्र में तो आहर-पइन-पोखर के साथ कुएँ से सभी प्रकार की जरूरत पहले पूरी हो जाती थी। अब नलकूपों के साथ-साथ नहरें भी आई हैं। पर पता नहीं क्यों पानी रोज-रोज कम ही होता जा रहा है। इन सवालों के जवाब ढूँढ़ने की कोशिश पहले भी लोगों ने की है - सारस्वत मुनि, आचार्य चाणक्य, वराह मिहिर पुराने जमाने के लोग हैं। नए जमाने में भारत सरकार के भारतीय भू-गर्भ सर्वेक्षण केन्द्रीय भू-जल बोर्ड, बिहार राज्य भू-जल बोर्ड आदि ने काफी अध्ययन किया है। इनके अतिरिक्त कई शोधकर्त्ताओं एवं संस्थाओं ने भी अध्ययन किया है। इनके अध्ययन से मगध की धरती की भीतरी बनावट एवं उसमें

जल की स्थिति की जानकारी मिलती है। इसे जानने के बाद अनेकों प्रश्न सहज ही शांत हो जाएँगे। पानी की विद्या को उत्तम माना गया है। धर्म्यं यशस्यंच वदाम्वर्तोऽहम् दकार्गलं येन जलोपलब्धिः।। (बृहत्संहिता, वराहमिहिर, उदकार्गला अध्याय।) अर्थात् मैं दकार्गला (उदाकार्गला) नामक विद्या को बताता हूँ जिससे जल की उपलब्धि होती है। यह धर्म एवं यश दोनों को देनेवाली है। केवल अर्थ की दृष्टि से विचार तो अविद्या का कार्य है। यह छोटी सी पुस्तिका भी धर्म एवं यश दोनों का देनेवाली हो इसी दृष्टि से आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस छोटी सी पुस्तिका में यहाँ की बनावट सिंचाई प्रणाली जल नीति तथा कुछ आंकड़े आदि प्रस्तुत किए गए हैं ताकि कोई भी सामान्य पाठक मगध क्षेत्र की जल व्यवस्था की वास्तविकता से संक्षेप में परिचित हो सके। यह पुस्तिका जल संरक्षण के क्षेत्र में काम करने वाले सामाजिक कार्यकर्ताओं तथा सामान्य पाठक दानों के लिए उपयोगी होगी ऐसी आशा है

बनावट एवं चौहद्दी

मगध क्षेत्र एक मिश्रित भौगोलिक संरचना वाला क्षेत्र है। इसके दक्षिण भाग में झारखंड का पठार है। इनसे निकलने वाली नदियों का अंत मगध के मैदानों में या गंगा में होता है। गंगा से दक्षिण की ओर अधिकतम ११० कि.मी. के लगभग पहुँचते ही पठारी क्षेत्र आ जाता है। कई स्थानों पर यह दूरी ५० कि.मी. से भी कम है। दक्षिण की पहाड़ियों एवं उस के पास की पठारी भूमि से ही अधिकांशः छोटी-बड़ी नदियों का उद्गम होता है। इसमें कुछ इलाके ग्रेनाइट एवं नाइस वाली चट्टानों के हैं तो कुछ क्वार्जाइट के। सोन से पूरब का इलाका मुख्यतः ऐसा ही है। गया से शेखपुरा तक की राजगीर श्रृंखला क्वार्जाइट वाली है। फतेहपुर के आसपास मिश्रित क्षेत्र है। गया संधिस्थल है। गया से डोभी के पास अमारुत तक एक बड़ा घाटी-क्षेत्र है जिससे बना ऊँचा मैदानी भाग है। ऐसी संरचना अन्यत्र भी है किन्तु छोटी है। जमीन की तीव्र ढ़ाल पहाड़ी भाग में तो है किन्तु दूसरी जगह वह बहुत कम हो जाती है। परिणामतः नदियाँ आरम्भ से कुछ ही दूर जाकर बूढ़ी हो जाती हैं। सोन, पुनपुन, गंगा बड़ी नदियाँ हैं। सोन के उग्र स्वभाव के कारंण इसे नद भी कहा जाता है। इसका पुराना नाम हिरण्यवाह भी है। हिरण्यवाह अर्थात सोने को ढोने वाला। मोरहर, सोरहर, फल्गु, निरंजना, ढ़ाढ़र, तिलैया, मंगुरा, जकोरी, धनार्जय, खूरी, पंचाने, सकरी, किउल आदि अन्य प्रमुख नदियाँ हैं। इनमें गर्मी में पानी रेत के भीतर बहता है। इसके साथ कुछ ऐसी छोटी नदियाँ भी हैं जो सालो भर बहने वाली सदा नीरा हैं, जैसे - जमुने एवं पैमार। जमुने में गया शहर से लगभग १० कि. मी. पश्चिम में चपरदह गाँव के पास एक बाँध भी है जिसमें पूरे समय पानी रहता है। गंगा से सटे इलाके पूर्णतः मैदानी हैं। यहाँ १०० से ३५१ फीट गहरे नलकूप लगाए जाते

हैं। गंगा का (यदि पर्यावरण प्रदूषण से मुक्त हो तब भी) केवल ऊपर बहने वाला जल ही कल्याणकारी है। भूगर्भ जल रासायनिक प्रदूषण से प्राकृतिक रूप से भरा हुआ है। भूगर्भ शास्त्र की दृष्टि से चूँकि गंगा का निर्माण परवर्ती है अतः दक्षिण से आने वाली नदियों के द्वारा १०० फीट के नीचे अंतःस्रावी सरिताओं का पूर्व में सृजन हुआ है। पटना-दानापुर के लोग नलकूपों के माध्यम से गंगा के जल का नहीं अपितु सोन के जल का ही उपयोग अपने नलकूपों द्वारा करते हैं। जमीन के भीतर से निकलनेवाली लाल, मोटे दाने वाली बालुका राशि का जल अमृत के समान है। इसी का उपयोग होता है। दक्षिणी भाग में तो इसी प्रकार की बालुका राशि है ही। जमीन के नीचे जो बालुका राशि है वह कहीं किसी ढेर के समान तो कहीं टापू के समान होती है। अधिकांश स्थानों पर वह जमीन में दबी नदी ही होती है क्योंकि वस्तुतः वह एक पुरानी नदी का भाग है और वर्त्तमान नदी की धारा से भी कई स्थानों पर उसका जुड़ाव होता है।

जमीन का सतही भाग और मिट्टी

उत्तर में गंगा नदी और दक्षिण में १५० मीटर समोच्च रेखा से आबद्ध छोटानागपुर उच्च भूमि के बीच औरंगाबाद, गया, नवादा, जहानाबाद, पटना और नालन्दा जिलों में विस्तृत क्षेत्र को मगध क्षेत्र कहा जाता है। यह क्षेत्र भारत के अति-प्राचीन जनपद मगध का समक्षेत्री है। गया, राजगीर और पाटलीपुत्र इसकी प्रचीनता के साक्षी हैं। इसका क्षेत्रफल १७,९१३ वर्ग कि.मी. और जनसंख्या १.२३६ करोड़ है।

मगध लम्बे समय से सुखी सम्पन्न क्षेत्र रहा है। यह एक विस्तृत भूभाग है जो सोन नदी के पूर्व से किउल नदी के पश्चिम तक और गंगा के दक्षिण से चतरा की सीमा के उत्तर तक फैला है। इस विस्तृत भूभाग को बनावट के आधार पर मुख्य रूप से तीन भागों में बाँटा जा सकता है- १.पठारी भाग २. घाटियों का मैदान ३. मैदानी भाग। पुराने भारतीय वैज्ञानिक वराहमिहिर के अनुसार मगध क्षेत्र को दो भागों में बाँटा जा सकता है - अनूप अर्थात् उपजाऊ मैदानी भू-भाग, जो जलोढ़ सामग्रियों से बना है तथा जंगल प्रदेश अर्थात् पठार एवं घाटियों से भरा भू-भाग। मगध में मरुस्थल नहीं है। यहाँ की मिट्टी का निर्माण ज्वालामुखी के लावे, ग्रेनाइट, ग्रेनाइटिक फेल्स्पार, सिस्ट, क्वारजाइट, सिलिका, बालू इत्यादि के विविध पत्थरों के अपरदन के कारण सम्मिश्रित जलोढ़ तथा कार्बनिक जैव पदार्थों से हुआ है।

ग्रेनाईटिक क्षेत्र

औरंगाबाद से बाराचट्टी, कउआकोल (नवादा) तक पश्चिम-पूर्व दिशा में तथा उत्तर से

दक्षिण बराबर की पहाड़ियों से लेकर रानीगंज तक मुख्य रूप से ग्रेनाइट की बड़ी-बड़ी पहाड़ियों पर ग्रेनाइटिक फेल्सपार, सिस्ट, खड़िया तथा सिलिका पाए जाते हैं। इन पत्थरों का हवा-पानी में उपस्थित रसायनों की प्रतिक्रिया से धीरे-धीरे अपरदन होता गया, जिससे कंकड़ीली मिट्टी तथा केवाल का निर्माण हुआ है। फेल्सपार एक ऐसा पत्थर है जो त्वरित गति से मिट्टी में बदलता रहता है तथा वर्षा के पानी द्वारा अपनी घाटियों में लसीली मिट्टी का निर्माण करता रहता है।

क्वार्जाइटिक क्षेत्र

बकरौर (बोधगया) से लेकर बिहारशरीफ तक दक्षिण-पूर्व दिशा में क्वारजाइट की पहाड़ियाँ हैं जिसे राजगृह पहाड़ी समूह के नाम से जाना जाता है। आगे बिहारशरीफ से पूर्व किउल तक पहाड़ियाँ चली गई हैं, जो बीच-बीच में टूट-टूट कर छोटी-छोटी पहाड़ियों या टीलों का भी रूप ले चुकी है। उनके बीच की घाटियों में छोटे-बड़े मैदानी क्षेत्र विकसित हो गये हैं। क्वारजाइट के अपरदन के बाद बालूवाली मिट्टी तथा सिलिका का निर्माण होता है। साथ ही इसमें मोरंग और क्वार्जाइटिक फेल्सपार पाए जाते हैं जो भूमि निर्माण में मुख्य भूमिका निभाते हैं। इसमें भीठ तथा दोमट मिट्टियों का निर्माण होता है।

मिश्रण प्रक्रिया

मगध क्षेत्र में बहने वाली नदियों का उद्‌गम स्थल मुख्यतः ग्रेनाइटिक क्षेत्र है। आगे ये नदियाँ क्वार्जाइटिक क्षेत्र या ग्रेनाइट के पठारी क्षेत्र से होती हुई मैदानी भू-भाग में प्रवेश कर गंगा में मिल जाती हैं। कुछ छोटी पहाड़ी नदियाँ मैदानी भू-भाग में भी फैल कर समाप्त हो जाती हैं। अधिकतर नदियाँ बरसाती हैं। कुछ में सालो भर पानी रहता है। इन नदियों के दोनों किनारों पर तथा अन्त में भी दोमट/बलसुन्दरी मिट्टी मिलती है, जो नदियों के द्वारा लाई गई जलोढ़ सामग्रीयुक्त होती है। इस क्षेत्र का आधा भूभाग इस प्रकार निर्मित हुआ है। मगध क्षेत्र का आधा से कुछ अधिक भूभाग पहाड़ों एवं नदियों द्वारा निर्मित छोटी, बड़ी उपजाऊ मैदानी क्षेत्र है। प्रतिवर्ष नदियों द्वारा मिट्टी आने से कार्बनिक जैवं पदार्थों की बहुलता के कारण मगध की भूमि में प्रचुर ऊर्वरा बनी रहती है। ग्रेन्नाइट में मिले-जुले फेल्सपार एवं ज्वालामुखी के लावे से बनी केवाल मिट्टी तथा नदियों की जलोढ़ सामग्री से दोमट एवं बलसुंदरी मिट्टी का निर्माण हुआ है। मगध क्षेत्र में दोनों प्रकार की मिट्टी पाई जाती है। दक्षिणी क्षेत्र में मिट्टी की बहुत कम मोटी परत मिलती है। मिट्टी के नीचे बालू या अतिसंक्षरित (मरे हुए) पत्थर पाये जाते हैं। इनके भीतर जल भंडार होता है। इन इलाकों में ढाल भी तीव्र हैं एवं कई छोटी-बड़ी नदियाँ भी बहती हैं। यहाँ जमीन के अंदर की परत कम मोटी है किंतु दाने बड़े होते हैं। उत्तर की ओर बढ़ने पर क्रमशः

मिट्टी एवं बालू (जमीन के भीतर) दोनों की परतें मोटी होती जाती हैं। गंगा के किनारे तो सोन एवं पुनपुन के द्वारा जमा की गई बालू की दो-तीन मोटी परतें जमीन के भीतर पाई जाती हैं। इनमें प्रचुर मात्रा में जल बहता है।

जमीन के भीतर भी पहाड़ी, टीला, घाटी, नदी, नाला, झील ये सब दबे हुए हैं। अतः मिट्टी, कंकड़, संरक्षित पत्थर, बालू आदि किसी निश्चित या नियमित गहराई में ही मिले यह जरूरी नहीं है। प्रायः ये मिलेजुले रूप से अंदर की बनावट के अनुसार मिलते हैं। इसलिए कूप या नलकूप निर्माण के समय गहराई या बनावट संबंधी एकरूपता के आधार पर लिया गया निर्णय प्रायः विफलता देने वाला हो जाता है। इस झंझट के बावजूद नलकूप निर्माण के लिए सरकारी तथा गैरसरकारी स्तर पर इतने अधिक छिद्र हुए हैं कि लोगों को अब बनावट की जानकारी हो गई है। केवाल मिट्टी बहु फसली नहीं है क्योंकि उसमें जल जल्दी सूखता नहीं है। इसी तरह यह पुनः जल संभरण की दृष्टि से भी बहुत उपयोगी नहीं है। सोन एवं पुनपुन के छाड़न क्षेत्र बलसुंदरी मिट्टी या बालू के टीलों से भरे रेगिस्तान की तरह लग सकते हैं किन्तु इन इलाकों में कम गहराई में प्रचुर मात्रा में जल मिलने से यहाँ भी अब सब्जी की खेती जमकर होती है। इन इलाकों में ताड़ के पेंड़ जंगल के समान हैं। औरंगाबाद एवं अरवल जिले में ऐसी बड़ी चौड़ी पट्टी है। इसका कुछ भाग जहानाबाद एवं पटना जिले में भी पड़ता है।

ढाल कम होने एवं गंगा नदी के द्वारा सरिता निर्माण की प्रक्रिया में अपने तटों को ऊँचा करने के कारण एक बड़ा भू-भाग पानी से भरा रहता है। यह मगध का उत्तरी क्षेत्र है। बाढ़ से बख्तियारपुर-मोकामा तक का टाल सभी जानते हैं। यह इलाका डूब क्षेत्र का है। गर्मी में कुछ इलाकों से तो पानी उतर जाता है किन्तु कुछ क्षेत्र पानी से भरे ही रह जाते हैं। मगध क्षेत्र की पर्वत श्रृखला एवं गंगा नदी के बीच पश्चिम में दूरी अधिक है जो पूरब में बहुत कम हो जाती है।

भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण एवं केन्द्रीय भूजल बोर्ड के निष्कर्ष

भूगर्भ सर्वेक्षण के द्वारा वर्ष १९६८ के आस-पास बिहार के जलभृतों का अध्यन किया गया था। उसके बाद केन्द्रीय भू जल बोर्ड ने शोध के कार्य को आगे बढ़ाया। राज्य स्तर पर भी बिहार राज्य भू-जल बोर्ड का गठन कर उसे प्रखण्ड स्तर तक के सघन सर्वेक्षण की जिम्मेवारी सौंपी गई। दुर्भाग्य से बिहार राज्य भू-जल बोर्ड के रिर्पोट केवल दीमकों के प्रिय हैं उनका अधिकांश भाग लुप्त एवं अप्रासंगिक हो गया है जबकि केन्द्रीय भू-जल बोर्ड की तुलना में इसने गहन कार्य किया था। केन्द्रीय भू-जल बोर्ड ने जिलावार रिर्पोट प्रकाशित किया है जो केवल सरकारी संस्थान एवं शोध संस्थानों के लिए ही सुलभ है।

१९६८ में Geological Survey of India के द्वारा गोपनीय दस्तावेज तैयार कराया गया। गोपनीय संभवतः इसलिए रखा गया क्योंकि उस रिपोर्ट पर बिहार सरकार पूरी तरह अमल नहीं करना चाहती थी, जैसा कि बाद के अन्य सामान्य रिर्पोटों के साथ हुआ। R.K. Roy, Director तथा Subrata Sinha वरीय भू-गर्भ वैज्ञानिक ने Ground Water Resources of Bihar with special Reference to the problems of planning and development for Irrigation Purpose तैयार किया। उपर्युक्त संस्थाओं के अध्ययन / शोध के प्रमुख निष्कर्ष निम्नलिखित हैं :-

मगध क्षेत्र में सालाना वर्षा १३० से १५० सेमी. तक होती है किन्तु कई साल यह ५० सें.मी. पर ही रुक जाती है। ९० प्रतिशत वर्षा मानसून के समय होती है। चक्रवाती वर्षा कम होती है। किसी खास इलाके में कब कितनी वर्षा होगी यह कह पाना असंभव है। यहाँ की नदियों का जलस्तर का बढ़ना-घटना मानसूनी वर्षा पर निर्भर है। पहले लगभग १० वर्षों के बाद सूखे की आवृत्ति होती थी जो अब तीन साल के बाद हो जाती है। पटना जिले में भू-गर्भ जल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। वहाँ जमीन के भीतर बालू की परत पुनपुन में ५६० मीटर बिहटा में ७०८ मीटर, बख्तियारपुर में ३७६ मीटर, बाढ़ में ४५७ मीटर, बिक्रम में ६८१ मीटर, पालीगंज में ३४४ मीटर, इस्लामपुर में १३८ मीटर, एकंगर सराय में २९१ मीटर, गुलनी में २७० मीटर तथा हिलसा-लौहरा क्षेत्र में ४२० मीटर से ४६५ मीटर गहराई तक है। इसके पहले भी ६० से लेकर १२० फीट की गहराई में भी जलस्रोत मिलते हैं। इनमें चापाकल लगे हुए हैं। सिंचाई के नलकूप ५० से १०० मीटर तक की गहराई में लगे हैं। नालंदा जिले का दक्षिणी भाग पहाड़ी है। यहाँ नदी के किनारे तो १० फीट की गहराई में भी जलस्रोत उपलब्ध हैं किन्तु शेष स्थानों पर इनकी स्थिति अनियमित है। सामान्य तौर पर कहा जाए तो बालू की परत उत्तर दिशा की ओर बढ़ती जाती है।

द्वितीय बिहार राज्य जल आयोग ने सिंचाई के संबंध में काफी सूचनाएँ इकट्ठी की हैं और एक विस्तृत रिपोर्ट भी छापा है। मेरी दृष्टि में इसकी सूचना के सभी स्रोत प्रामाणिक नहीं हैं और आश्चर्यजनक रूप से केन्द्रीय भू-जल बोर्ड एवं प्रांतीय भू-जल बोर्ड जैसी संस्थाओं को आयोग की टीम में सम्मिलित नहीं किया गया है जबकि ये दोनों संस्थाएँ प्रयोगधर्मी और तटस्थ स्वभाव वाली हैं। दरअसल इसकी विस्तृत रिर्पोट एवं सुझाव अंधाधुंध बोरिंग को बहुत प्रोत्साहित नहीं कर सकता। अतः इसके अध्ययन एवं निष्कर्षों से मुँह मोड़ना सरकार एवं जल आयोग के लिए शायद सुविधाजनक हो सकता है।

अध्याय दो : परंपरागत सिंचाई व्यवस्था

चर्चा प्रारंभ करने के पूर्व मगध की सीमा एवं परंपरा के अर्थ को समझ लेने से चर्चा को आगे बढ़ाने में सुविधा होती है। परंपरा शब्द का प्रयोग करते ही अतीत से लेकर वर्तमान की कड़ियाँ सामने आने लगती हैं। मगध की सीमा कई बार घटती-बढ़ती रही है। वस्तुतः यह मगध साम्राज्य की सीमा का बढ़ना या घटना हुआ है। सांस्कृतिक दृष्टि से मगध की सीमा लगभग स्थिर रही है। मेरी दृष्टि में कर्मनाशा के पूरब से प्रारंभ कर किउल नदी तक का क्षेत्र मगध का क्षेत्र है। इसकी उत्तरी सीमा गंगा नदी है और दक्षिणी सीमा छोटानागपुर का पठारी भाग। कुछ लोग सोन के पश्चिमी भाग को मगध नहीं मानते हैं। वे उसे भोजपुरी क्षेत्र समझते हैं लेकिन थोड़ी ही गहराई में जाने के बाद यह पता चलने लगता है कि वस्तुतः कर्मनाशा तक का भाग मगध क्षेत्र ही है। फिलहाल इस बहस को यहीं स्थगित किया जा रहा है।

जहाँ तक परंपरा की बात है, मेरी दृष्टि मे बहुसंख्यक आबादी के द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी अपने अनुभव एवं ज्ञान को आगे बढ़ाने वाली जीवन शैली ही परंपरा है। इस प्रकार परंपरागत व्यवस्थाएँ एक ही साथ पुरानी, गतिशील तथा जीवन एवं परिस्थति के अनुकूल नए-नए रूप धारण करने वाली होती हैं। सिंचाई व्यवस्था के क्षेत्र में भी मगध का अपना पारंपरिक ज्ञान एवं अनुभव है।

मगध की खेती ऐतिहासिक दौर में अग्रणी रही है। यहाँ खेती की प्रतिष्ठा रही है। बुद्ध के समय में भी यहाँ का संभ्रान्त कहा जाने वाला ब्राह्मण वर्ग खेती करता था इसका भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि वह हल भी जोतता था। इसका वर्णन 'कसि भारद्वाज' सुत्त में आता है। बड़े-बड़े भिक्षु संघों एवं विश्वविद्यालयों का बोझ उठाना उन्नत खेती के बिना संभव नहीं था। उन्नत खेती और सिंचाई की व्यवस्था पर सभी राजा एवं जमींदार ध्यान देते थे। नए-नए जलाशय बनवाना एवं उसका रख-रखाव तथा मरम्मत का काम सामाजिक एवं धार्मिक कार्य समझा जाता था। इससे जीवन में ही नहीं मरने के बाद भी पुण्य की प्राप्ति होती है, ऐसा विश्वास रखा जाता था।

मगध की परंपरागत सिंचाई व्यवस्था के बारे में तीन-चार स्रोतों से जानकारियाँ मिलती हैं। सबसे विस्तृत और व्यापक जानकारी परंपरागत सिंचाई की वर्तमान प्रचलित प्रणाली है जिन्हें आज भी आसानी से देखा-समझा जा सकता है एवं उनके गुण-दोषों की परीक्षा की जा सकती है। इससे थोड़ा पीछे चलने पर पुरानी सिंचाई प्रणालियों के अवशेष मिलते हैं जिनके आधार पर पुरानी व्यवस्थाओं की कल्पना की जा सकती है और वर्तमान परिस्थतियों के अनुरूप उनसे कुछ सीखा-समझा जा सकला है। तीसरा स्रोत साहित्यक स्रोत है। इसमें शिलालेख एवं प्रकाशित पुस्तकें हैं। उनमें सिंचाई व्यवस्था के बारे में पर्याप्त वर्णन है। यह विषय बहुत ही विस्तृत है इसलिए यहाँ संक्षेप में चर्चा की जा रही है।

परंपरागत सिंचाई की वर्तमान प्रणालियाँ

आज भी मगध के ग्रामीण क्षेत्रों में परंपरागत सिंचाई की निम्न प्रणालियाँ मौजूद हैं। पइनें, आहर, पोखर, कूप एवं अन्य। इनके साथ कई उपकरण एवं नई विधियाँ भी मगध ने विकसित की हैं। नलकूप निर्माण का कार्य भी मुख्य रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी ज्ञान की शैली में विकसित हो रहा है। अतः नलकूप प्रणाली को परंपरागत व्यवस्था के अंतर्गत सिंचाई की परंपरा की नई कड़ी के रूप में मैं ने स्वीकार किया है।

सिंचाई की परंपरागत व्यवस्थाएँ यहाँ दीर्घ काल से अच्छी हैं। उनमें कुछ का आगे विकास हुआ तथा कुछ ह्रास के क्रम में हैं जिनके बारे में आगे चर्चा होगी। इस क्षेत्र में प्रचलित सिंचाई व्यवस्थाएँ निम्नलिखित हैं।

पइन

मगध क्षेत्र एक कृषि प्रधान क्षेत्र है। यहाँ की अर्थ व्यवस्था पूर्णतः कृषि पर आधारित है। शुद्ध बोया गया क्षेत्र ६८७ हजार हेक्टेयर है। इस बोए गए क्षेत्र के ६० प्रतिशत भाग पर धान की खेती होती है। सर्व प्रमुख फसल धान है। धान की सफलता पूर्वक उत्पादन के लिए नियमित पानी की जरुरत होती है। "धान-पान नित्य स्नान"। धान की सफल खेती के लिए जून में १०० मि.मी., अगस्त में ३०० मि.मी सितम्बर में २०० मि.मी. और अक्टूबर में १०० मि.मी. वर्षा की आवश्यक्ता होती है। इस वितरण में व्यतिक्रम उत्पन्न होने पर धान की फसल के मारे जाने की संभावना उत्पन्न हो जाती है। जून में वर्षा कम होने पर धान के बीज की बोआई नहीं हो पाती है, जुलाई और अगस्त में वर्षा कम होने पर धान की रोपनी नहीं हो पाती और सितम्बर-अक्टूबर में नहीं होने पर उपजी हुई धान की फसल मारी जाती है। इस हालात में सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है।

भूमि की स्वाभाविक ढाल पर सिंचाई के लिए सामान्यतः नदियों से निकाली गई पतली, सँकरी और लंबी वाहिकाओं को पइन कहते हैं। नदियों के अतिरिक्त अन्य स्रोतों से निकाले गए छोटे-छोटे नालों को भी 'पइन' कहा जाता है। ये नहरों के समतुल्य हैं। 'बहता पानी निर्मला' के सिद्धांत के अनुसार पइन का जल पवित्र माना जाता है। पानी और पैन समानार्थक हैं पैन से पइन का ध्वनिसाम्य प्रगट है। पइनें मुख्य रूप से दो प्रकार की होती हैं।

(क) नदियों को या वर्षा के जल को रोक कर नहर की भाँति बनाई गई।
(ख) बिना बाँधे हुए समानांतर या सीधी ढाल के आधार बनाई गई।

यहाँ नदियों को बाँध कर छोटे-छोटे बाँधों का भी निर्माण किया गया है तथा उनसे छोटी नहरें एवं नाले निकाले गए हैं, जैसे – घोड़ाघाट, तिलइया, निमसर का बाँध। नदियों को बिना बाँधे उसके ऊपरी भाग में ही नदी के समानान्तर नाले का निर्माण किया जाता था, जिसे पइन कहा जाता है। पइन खेतों से ऊपर या बराबर में बहती हैं। इससे सिंचाई सुविधाजनक हो जाती है। आज भी पंचानपुर से टेकारी तक इस प्रकार के पइनों की उत्तम व्यवस्था देखी जा सकती है।

मगध क्षेत्र दो तरफ से पहाड़ियों से घिरा है। अतः वर्षा ऋतु में पहाड़ों से बहते हुए वर्षा के जल को एक बड़े तालाब या पोखर में इकट्ठा कर के भी आगे पइनें निकाली जाती थीं, जिससे पानी इच्छित दिशा में नालों में बहता था। उससे खेतों को काफी आगे तक सिंचित किया जाता था तथा पहाड़ियों का पानी बिखर कर बरबाद नहीं हो पता था। वजीरगंज इलाके में आज भी इस प्रकार की पइनें देखने को मिलती हैं। गया में ब्रह्मयोनि पर्वत के नीचे बनी पइन आज समाप्तप्राय है। पइनों की प्रत्येक वर्ष उड़ाही (बालू निकालना) करनी पड़ती है। पइन से नदी द्वारा लाए गए कार्बनिक जैव पदार्थ सीधे खेतों को प्राप्त होते हैं।

पहाड़ियों के ऊपर घाटी या छोटे मैदानी भागों के जलनिकासी वाले भागों में भी बाँध का निर्माण कर उससे पइनें निकाली जाती थी, उदाहरणार्थ उमगा की पहाड़ी (औरंगाबाद जिला) से निकली पइन। कुछ ऊँचे मैदानी टीलों से भी पइनें निकाली गईं थीं। इसका बहुत अच्छा उदाहरण मगध विश्वविद्यालय के पइन का अवशेष है। इनका उपयोग मुख्य रूप से खरीफ की सिंचाई में होती है लेकिन यमुने नदी आदि से निकलने वाली पइनों में सालों भर पानी बहता रहता है।

मगध क्षेत्र के किसानों ने अपनी प्रज्ञा से अति प्राचीन काल से ही सिंचाई के लिए पइन का विकास किया है। आज से ४००० वर्ष पहले, जब मनुष्य ने यहाँ कृषि कार्य प्रारंभ किया था, तब वर्षा की कमी होने पर नदी जल का उपयोग वह सिंचाई के लिए करता था। नंद एवं मौर्य वंश के शासनकाल में भी तालाब और पइन से सिंचाई के उदाहरण मिलते हैं। बरसात में नदियों का जलस्तर काफी ऊँचा हो जाता है। नदी तट, जो कभी-कभी आस-पास के अन्य क्षेत्रों से ऊँचा होता है और उसके दोनों तरफ गहरी जमीन होती है। ऐसी संरचना सरितानिर्माण के क्रम में सहज बनती जाती है। इन निचले इलाकों में या कुछ कम गहरे इलाकों में आहर बना कर सोन एवं पुनपुन की पइनों से बड़े-बड़े आहरों के भरने की व्यवस्था थी। ऐसे नालों एवं पुलियों के मौर्यकालीन अवशेष भरे पड़े हैं। नदी की ढाल के समानांतर चलने वाली पइनों की संख्या सबसे अधिक है।

यहाँ वर्षा भली भाँति वितरित नहीं है। वर्षा अनियमित, अनिश्चित और परिवर्ती है। यह परिवर्तिता लगभग २५ प्रतिशत हैं। यहाँ भूमि की ढाल तीव्र (प्रति किलोमीटर १५ मीटर) है जिस कारण नदी का जल शीघ्र बह कर निकल जाता है। जिस भूभाग में सिंचाई करनी होती है, उससे ऊँचे स्थान से पइन निकाली जाती है। सामान्यतः पइन के निकलने की जगह से डेढ़-दो किलोमीटर नीचे से सिंचाई प्रारंभ होती है। नदियों के समानान्तर चलने वाली पइन में नदी के जल-तल से अधिक ऊँचाई पर जल को चलते देखकर कौतूहल होता है। यह स्थिति हंटरगंज एवं पंचानपुर में देखी जा सकती है।

बड़ी पइन से सैंकड़ों गाँवों की और छोटी पइन से एक या कुछ गाँवों की सिंचाई होती है। बड़ी पइन में शाखाएँ होती हैं। जिस पइन में लगभग दस शाखाएँ होती हैं, उसे 'दसिअइन' कहते हैं। गया जिले में लोग इसे 'दसअइन' पइन कहते हैं। मोहनपुर की दसिअइन पइन, करपी का दसिअइन नाला, कुर्था का गंगहर नाला आदि इसके उदाहरण हैं।

पइनें गया और नवादा जिलों में अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। यहाँ पर हर जगह पइनें निकाली गई हैं। यहाँ की नदियाँ - मोरहर, लिलाजन, मोहाने, फल्गू, ढाढर, ढाढर, मंगुरा, जकोरी, तिलैया, खूरी, धनार्जी, सकरी, नाटा, बघेल आदि छिछली हैं और वर्षा होने पर उफन पड़ती हैं। नदियों के उफनने के साथ पइन चालू हो जाती है। इन नदियों का लगभग सम्पूर्ण जल सिंचाई के कार्य के लिए उपयुक्त होता है।

पइनें सिंचाई का कार्य केवल वर्षा काल (जुलाई-सितम्बर) में करती हैं। वर्षा ऋतु के अंतिम चरण में उत्तरा और हथिया नक्षत्रों में पइन के मुहाने के नीचे कच्चा बाँध लगा कर सम्पूर्ण जलप्रवाह को खेतों की ओर मोड़ दिया जाता है। मोहाने नदी से निकलने वाले मानपुर प्रखंड की मोराटाल पइन तथा पुनपुन नदी के नौरंगा और मोतेपुर बाँध से निकलने वाली पइन इसके उत्तम उदाहरण हैं। आज कच्चे बाँधों के स्थान पर नदियों में कुछेक जगहों में स्लुइस गेट या वियर बना दिए गए हैं। यूँ तो पइन का पानी खेतों में स्वतः घूमता है पर आवश्यकतानुसार लाठा-कूँड़ी, दोन या डिजल पम्प का भी प्रयोग किया जाता है। किसानों द्वारा बनाई गई पइन व्यवस्था आज भी उतनी ही उपयोगी है।

आहर

आ समन्तात् अर्थात सामने से आने वाले, जल को जो हरण करे, रख सके वह आहर है। आहर की गहराई कम होती है और जल को शोधित करने वाली बड़ी मछलियाँ भी केवल ऋतुकालीन जल में विकसित नहीं हो पाती हैं। आहर के प्रति पवित्रता का भाव नहीं होता है। यह वर्षा के जल को संग्रह करने हेतु दो या तीन तरफ से बाँध कर बनाया

गया जलाशय है। आहर आज भी गाँव-गाँव में देखने को मिलते हैं। दो पहाड़ियों के बीच के स्थान को भी एक तरफ से बाँध कर आहर बनाया जाता है। वास्तव में ये छोटी-छोटी झील जैसी संरचनाएँ होती हैं किंतु गाँव के लोग इन्हें भी 'आहर' ही कहते हैं।

यह वर्षा के जल को संग्रह करने हेतु दो या तीन तरफ से बांध कर बनाया गया जलाशय है। ये अंग्रेजी के एल (L) या यू (U) आकृति में बने होते हैं। कम ढ़ाल का ऊपरी हिस्सा बन्द कर दिया जाता है। आहर आज भी गाँव-गाँव में देखने को मिलते हैं। दो पहाड़ियों के बीच के स्थान को भी एक तरफ से बांध कर आहर बनाया जाता है। वास्तव में ये छोटी-छोटी झील जैसी संरचनाएँ हैं, किन्तु गाँव के लोग "अहरा" ही कहते हैं। आहर सर्वत्र पाये जाते हैं। आहर को नदी या पहाड़ से निकलने वाली पइनों से भी जोड़ा जाता है जिससे अहरा में वर्षा का जल इकट्ठा कर लिया जाता है। अहरा से भी वितरण हेतु छोटी पइनें निकाली जाती हैं। बिना अहरा के पइन का लाभ केवल वर्षा होते समय ही उठाया जा सकता है। पइन से आहर को भर लेने पर धान की खेती में लम्बे समय तक उपयोग सम्भव होता है। आहर के पानी का उपयोग खरीफ की फसलों की सिंचाई में किया जाता है। बाद में उसका पानी निकाल कर उसी अहरा में 'रबी' की बुआई कर दी जाती है। आहर की जमीन एक फसली जमीन के रूप में प्रयुक्त होती है।

ठाट एवं दह

मगध में उँची चौड़ी पठारनुमा आकृति को ठाट कहते हैं। यह अनुर्वर भूमि होती है। इस पर होनेवाली वर्षा के जल को सीधे खेत में या आहर में भरने की बहुत अच्छी व्यवस्था रही है। वर्तमान मगध वि० वि एवं उसके दक्षिण के इसी ठाट से कई आहर एवं पइनें निकाली गई थीं जिनमें बने पक्के फाटकों के अवशेष अभी भी देखे जा सकते हैं।
इसके विपरीत दह होता है। दह संस्कृत के ह्रद शब्द का पर्यायवाची रूप में एवं झरने के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। पुरानी नदियों में सोन एवं पुनपुन ने बार-बार अपनी धाराएँ बदली हैं। इनकी पुरानी धारा में भी बरसाती जल पर्याप्त मात्रा में यूं ही बहता रहता है। इसे दह कहते हैं। धान की खेती ऐसे इलाकों में खूब होती है और रबी से अधिक गर्मा सब्जी के लिए यह उपयोगी हो रहा है। दह क्षेत्र में अनेक स्थानीय तीर्थ हैं।

पोखर/पोखरी

जो जल को पवित्र करे उसे पोखर या पोखरी (पुष्कर-पुष्करिणी) कहा जाता है। पहले इनके प्रति पवित्रता एवं लगाव का भाव होता था। पोखर सामान्य स्नान से पेय जल तक काम में आते थे। पीने के पानी वाले पोखरे में पशुओं को धोना आदि मना होता था। अब ऐसे पोखर अपवाद स्वरूप मिलते हैं। आज अश्रद्धा और उपेक्षा का भाव बढ़ गया है।

चारो तरफ मेंड़ से बने जलाशय को पोखर (छोटा तालाब) कहते हैं। पोखर में पानी आने तथा निकलने के लिए रास्ते बने होते हैं। पोखर की सीमा (लंबाई-चौड़ाई) स्थान की उपलब्धता पर छोटी या बड़ी हो सकती है। गहराई भी वहाँ के लोगों की आवश्यकता के अनुसार होती है। कुछ 'पोखरे' पक्के बँधे होते हैं, कुछ कच्चे तथा कुछ स्थानीय पत्थरों और मिट्टी से बँधे होते हैं। रबी तथा खरीफ की सिंचाई के लिए पोखरे का भी उपयोग होता है, हालाँकि इनकी संख्या बहुत कम है।

कुआँ

वर्षा ऋतु के बाद सिंचाई के लिए पोखर या कुआँ ही उपयोग में आता था। 'सिस्ट' वाले इलाके (जैसे फतेहपुर का इलाका) में कुआँ ही सिंचाई का सार्थक साधन है। बड़े आकार के कुओं में पानी संचित होता है। कुआँ का पानी रेहट, मोट, दोन तथा लाठा-कूँड़ी से निकाला जाता था। वर्तमान समय में मोट का प्रचलन बंद हो गया है। रेहट भी कमता जा रहा है। उसके स्थान पर पंप द्वारा पानी निकाला जाने लगा है। छोटे किसानों द्वारा छिछले पानी वाले कुओं से आज भी लाठा-कूँड़ी द्वारा पानी निकाला जाता है। कुओं की सार्थकता रबी एवं नगदी (मौसमी फल एवं सब्जियों या अन्य) फसलों के लिए आज भी है।

पानी उलीचने के छोटे उपकरण सैर, दोन, रहट आदि

जब जलाशयों का जलस्तर खेत से नीचे चला जाए या जहाँ खेत की ऊँचाई अधिक हो वहाँ सतही जलाशयों जैसे आहर पइन, बरसाती नदी आदि से तीन चार फीट की ऊँचाई तक मानव श्रम से पानी उलीचने के लिए सैर एवं दोन का उपयोग किया जाता है। ये उपकरण लुप्त होते जा रहे थे किन्तु डीजल की बढ़ती कीमतों के कारण पुनः इनका उपयोग बढ़ा है। कुएं से पानी निकालने के लिए लाठा-कूंड़ी आज भी कमोबेश चलन में है, जहाँ कुआँ कमजोर हो। रहट बैल द्वारा चलाया जाता था। रहट के अब महँगा होने एवं बैल की जगह ट्रैक्टर पर निर्भरता के दौर में उसे अनुपयोगी माना जाने लगा है। इन उपकरणों के स्थान पर विभिन्न प्रकार के डीजल पंप चलन में आ रहे हैं। पानी भरने के चमड़े के थैले को मोट कहते थे। अब यह पूर्णतः लुप्त हो गया है। मध्य प्रदेश के कुछ इलाकों में अभी भी यह चलन में है।

उदकार्गला : जल प्रबंधन की पारंपरिक विद्या

जिस समाज में व्यवस्थित जलाशय हों वहाँ उसकी व्यवस्थित विद्या भी होगी ही। उदकार्गला का अर्थ है जल की बाड़/छिटकनी/यंत्र। व्यावाहारिक अर्थ हुआ - जल को रोकने, जलाशय निर्माण, भू-गर्भ जल को खोजने, अनेक प्रकार के कुओं के निर्माण,

खुदाई उपकरणों की देखभाल के साथ दुर्भाग्य से पेय जल के खारा निकालने पर उसे मीठा पेय जल बनाने की विधियों का शास्त्र। उदकार्गला को दकार्गला भी कहते हैं। इस विद्या के तीन प्राचीन आचार्यों की चर्चा मिलती है। सारस्वत मुनि, कौटिल्य एवं वराहमिहिर। कौटिल्य एवं वराहमिहिर की पुस्तकें प्रकाशित एवं उपलब्ध है। अर्थशास्त्र एवं बृहत्संहिता में भूगर्भ की संरचना, जलप्रवाह पहचानने की विधियाँ तथा अन्य संबद्ध विषय वर्णित हैं।

परंपरागत जलविद्या के क्षेत्र में वराहमिहिर का योगदान

मगध के दूसरे आचार्य वराहमिहिर ने जल व्यवस्था को सबसे महत्त्वपूर्ण माना है। इनकी दृष्टि में यह विद्या धर्म तथा यश दोनों को देने वाली विद्या है। वराहमिहिर की एक प्रसिद्ध पुस्तक बृहत्संहिता ऐसी लोकोपयोगी विद्याओं का विश्वकोष है। बृहत्संहिता का उदकार्गला अध्याय जल व्यवस्था का अध्याय है। यह जल व्यवस्था आम आदमी के लिए उपयोगी जल व्यवस्था है न कि विशिष्ट या विलास की प्रणाली। जलस्रोत का ज्ञान एवं जल की व्यवस्था धर्म एवं यश को देने वाली है।

वराहमिहिर के अनुसार जल के तीन स्रोत होते हैं। एक स्रोत है दिव्य जल, जो वर्षा का जल है।

एकेन वर्णेन रसेन चाम्भ च्युतं नभस्तो वसुधाविशेषात्।
नानारसत्वं बहुवर्णतां च गतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेव।। उदकार्गलाध्याय

वर्षा जल अत्यंत स्वच्छ और पवित्र होने से दिव्य है। वर्षा का जल जब पृथ्वी पर गिरता है तो पृथ्वी के जिस भूभाग से उसका संपर्क होता है। वह उसके गुण दोषों को धारण कर लेता है। यह जल भौम जल है।

भौम जल दो प्रकार का है - एक जो पृथ्वी के ऊपर में बहता रहता है और दूसरा जो शिराओं के रूप में स्थित है। जैसे मनुष्य के शरीर में अनेक प्रकार की रक्तवाहिनी नाड़ियाँ हैं जो रक्त को विभिन्न भागों तक पहुँचाती हैं उसी प्रकार पृथ्वी के भीतर अनेक प्रकार की शिराएँ (धाराएँ) भी होती हैं।

पुंसां यथाङ्गेषु [रास्तथैव क्षितावपि प्रोन्ननिम्नसंस्थाः।। उदकार्गलाध्याय

आधुनिक भूगोल की भाषा में इन्हें अंतःस्रावी नदी एवं धारा कहा जाता है। वराहमिहिर ने जमीन के भीतर बहने वाली ऐसी शिराओं को पहचानने की विधियों का संकलन किया है और अपनी पुस्तक बृहत्संहिता के उदकार्गलाध्याय में इस विषय का विस्तृत विवरण दिया है।

वराहमिहिर के अनुसार जल की दृष्टि से जमीन तीन प्रकार की होती है। पहला क्षेत्र 'अनूप' अर्थात जलोढ़ क्षेत्र होता है जो नदियों के द्वारा बहा कर लाई गई मिट्टी, बालू वगैरह से बना हुआ होता है। इसके लिए वराहमिहिर एवं अन्य आचार्यों द्वारा प्रयुक्त शब्द 'अनूप' क्षेत्र है। ऐसे क्षेत्र में जमीन के भीतर पर्याप्त जल उपलब्ध होता है और यहाँ की वनस्पतियाँ बहुत ही पुष्ट होती हैं। अनूप क्षेत्र में जल होता तो सर्वत्र है लेकिन वहाँ भी जलस्रोत एवं इसकी गहराई तथा दिशा का ज्ञान कूप या नलकूप के निर्माण के लिए जरूरी होता है। अनूप क्षेत्र से अधिक समस्या जांगल क्षेत्र में होती है। जांगल शब्द पहाड़ी या पठारी क्षेत्र के लिए पारिभाषिक शब्द के रूप में प्रयुक्त हुआ है। पठारी क्षेत्र में जल की शिराएँ सर्वत्र उपलब्ध नहीं होती हैं और यहाँ सावधानी से जल को ढूंढना पड़ता है। मरु भाग मगध में पाया नहीं जाता।

इन परिस्थितियों में ही मगध में पूर्ववर्णित आहर आदि प्रणालियों का विकास हुआ और जलाशय बनाने से लेकर कुआँ खोदने की विधियाँ विकसित होती रहीं।

वराहमिहिर ने पोखर, तालाब एवं अन्य जलाशयों के निर्माण संबंधी बातों का स्पष्ट विवरण दिया है। जलाशयों को उत्तर-दक्षिण लंबा नहीं होना चाहिए क्योंकि पछुआ हवा के थपेड़ों से उठने वाली तरंगें तटबंधों को तोड़ सकती हैं, आदि।

वापी प्रागपरायताम्बुसुचिरे धत्ते न याम्योत्तरा,
कल्लोलैरविदारमेति मरुता सा प्रायसः प्रेरितैः।
तां चेदिच्छति सारदारुभिरपां संतापमावारयेत्
पाषाणादिभिरेववा प्रतिचयं क्षुण्णं द्विपा वादिभिः।। उदकार्गलाध्याय

पूर्व-पश्चिम लंबी वापी में जल बहुत काल तक रहता है और दक्षिण-उत्तर लंबी में नहीं ठहरता है क्योंकि पवन से उठाए हुए बड़े तरंगों से वह टूट जाती है। जो व्यक्ति दक्षिण उत्तर लंबी पुष्करिणी बनाना चाहे वह जल की चोट से बचाव करने के लिए उसके किनारों को दृढ़ काष्ठ से बाँध दे या पत्थर, ईंट आदि से चिनवा दे। बनाने के समय मिट्टी के प्रत्येक आसार (तटबंध) को घोड़े-हाथी आदि से रुदवाता चला जाए, जिससे वह मिटटी दब जाए और जल के धक्के से नहीं टूटे।

तटबंधों की मिट्टी को हाथी के पैरों से रौंद कर कड़ा बनवाना चाहिए जल के प्रवेश एवं निकास के स्थान पर शिलापट्टों का प्रयोग करना चाहिए किनारे-किनारे तटबंधों को मजबूत करने वाले वृक्ष लगाने चाहिए

ककुभवटाम्रप्लक्षकदम्बैः सनिचुलजम्बूवेतसनीपैः।
कुरबकतालाशोकमधूकैर्बकुलविमिश्रै चावततीराम्।। 122।। उदकार्गलाध्याय

तटबंधों के किनारों को निम्न पेड़ों की छाया से भर देना चाहिए ताकि वे सुरक्षित रहें। वे वृक्ष हैं – ककुभ, आम, बरगद, कदंब, बेंत, निचुल, कुरबक, ताड़, अशोक, महुआ, बकुल आदि।

ऊपर के जलस्रोत सदैव उपलब्ध नहीं रहते हैं। ऐसी अवस्था में कुएँ के माध्यम से भूगर्भ में बहनेवाले जल को निकालना पड़ता है। पहले कुएँ से विभिन्न उपकरणों द्वारा पानी निकाला जाता था। अब कुआँ के साथ-साथ नलकूपों का भी काफी संख्या में उपयोग होने लगा है।

वराहमिहिर ने अंतःस्रावी स्रोतों का पता लगाने के लिए वनस्पतियों एवं कीट-पतंगों की सहजीवन की पद्धति के आधार पर विस्तार से लक्षण पहचानने की विद्या का वर्णन किया है। इसके कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं।

कच्छपकः पुरुषार्धे प्रथमं चोश्यिते शिरा पूर्वा।
उदगन्या स्वादुजला हरितोऽश्माऽधस्तत्तस्तोयम्।। 34।। उदकार्गलाध्याय

आधे पुरुष नीचे कछुवा और फिर पहले पूर्व की शिरा से जल निकलता है, दूसरी वादु जल से युक्त उत्तर शिरा बहती है। पहले हरे रंग का पत्थर और उसके नीचे जल होता है।

उत्तरत च मधूकादहिनिलयः पश्चिमे तरोस्तोयम्।
परिहृत्य पञ्च हस्तान् अर्धाष्टमपौरुषे प्रथमम्।। 100।। उदकार्गलाध्याय

महुए के वृक्ष से उत्तर वल्मीक हो तो उस वृक्ष से पश्चिम पाँच हाथ छोड़ कर साढ़े आठ पुरुष नीचे जल होता है।

खर्जूरजम्ब्वर्जुनवेतसाः स्युः क्षीरान्विता वा द्रुमगुल्मवल्ल्यः।
छत्रेभनागाः शतपत्रनीपाः स्युर्नक्तमालाश्च ससिन्दुवाराः।। 101।। उदकार्गलाध्याय

खजूर, जामुन, अर्जुन, वेंत के वृक्ष हों या जहाँ वृक्ष, गुल्म और लताएँ ऐसी हों जिनसे दूध निकलता हो अथवा छत्री, हस्तिकर्णी, नागकेसर, कमल, कदम्ब, नक्तमाल, सिंधुवार वृक्ष हों।

पथरीले इलाके में कुआँ खोदने के लिए बिना बारूद पत्थर तोड़ने की विधि एवं औजारों को बनाने तथा मरम्मत की विधियों का भी वर्णन किया है।

भेदं यदा नैति शिला तदानीं पलाशकाष्ठैः सह तिन्दुकानाम्।
प्रज्वालयित्वानलमग्निवर्णा सुधाम्बुसिक्ता प्रविदारमेति।। उदकार्गलाध्याय

कूप आदि खोदने के समय शिला निकल आए और वह फूट न सके तो उसके ऊपर ढाक

और तेंदु के काठ को जला कर उस शिला को गीला कर ले, फिर उसके ऊपर चूने की कली से मिला हुआ जल छिड़के तो वह शिला टूट जाती है।

तोयं श्रृतं मोक्षकभस्मना वा यत्सप्त त्वः परिषेचनं त्त्।
कार्यं शरक्षारयुतं शिलायाः प्रस्फोटनं वह्निवितापितायाः।। 113।। उदकार्गलाध्याय

मरुवा वृक्ष का भस्म मिला कर जल को औंटावे फिर उसमें शर का क्षार मिला कर पीछे अग्नि से तपाई हुई शिला के ऊपर सात बार उस जल को छिड़के तो शिला टूट जाती है।

तक्रकाञ्जिकसुराः सकुलत्था योजितानि बदरीणि च तस्मिन्।
सप्तरात्रमुषितान्यभितप्तां दारयन्ति हि शिलां परिषेकैः।। 114।। उदकार्गलाध्याय

छाछ, कांजी, मद्य, कुलथी और बेर के फल, इन सबको एक बंरतन में सात रात्रि रखे फिर शिलाओं को पहले कही गई रीति से तपाए, इन वस्तुओं को बार-बार छिड़के तो वह शिला टूट जाती है।

इतना ही नहीं वनस्पतियों की मदद से खारे पानी को मीठे पानी में बदलने की विधि भी बृहत्संहिता में वर्णित है।

कलुषं कटुकं लवणं विरसं यदि वा शुभगंधिं भवेत् ।
तदनेन भवत्यमलं सुरसं सुसुगंधिगुणैरपरैश्च युतम्।। उदकार्गलाध्याय

जो जल गंदला, कड़आ, खारा, बेस्वाद या दुर्गन्धयुक्त हो तो वह इस चूर्ण के डालने से निर्मल मीठा, सुगंध तथा और भी कई उत्तम गुणों से युक्त हो जाता है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि मगध का पारंपरिक ज्ञान न केवल सिंचाई अपितु पेय जल की व्यवस्था करने में भी अपने समय और आवश्यकता के अनुरूप पर्याप्त था।

मगही समाज

मगध अतिवादी भूमि है। अतः यहाँ नए-नए प्रयोग होते रहते हैं। भगवान बुद्ध ने शायद इसीलिए मध्यम मार्ग में समाधान पाया। पानी और खेती भी अतिवाद से अछूते नहीं रहें। एक ओर "असल की बेटी, केवाल की खेती" का आदर्श है तो दूसरी तरफ बहुफसली अत्याधुनिक प्रयोगों की अंधी दौड़ जारी है। केवाल में एक बार भी अच्छी वर्षा हो जाने पर फसल मरती नहीं थी चाहे वो स्त्री हो या खरीफ धान के खेत में पैरा डालने पर भू-गर्भ जल निकालने की आवश्यक्ता ही नहीं थी। आहर का पानी भी सुखा दिया जाता था। रबी की फसल लगाई जाती थी।

समाज ने अपनी आवश्यकतानुसार शैली बदल ली। विवाह का पारंपरिक रूप अब आदर्श नहीं है। न रबी न धान का खेत, किसी की भी गर्भावस्था में ठीक से देख-रेख नहीं हो रही है। दोनों का बुरा हाल है। औरत या धान की बाली दोनों की चोटी गूँथना किसान भूल गया। बच्चे बीमार और धरती ऊर्वराहीन एवं जलाभावयुक्त होने लगी है।

दोमट एँव बलसुंदरी जमीन वाले पहले उपेक्षित समझे जाते थे। अब इन इलाकों में "बाल सड़े तो सोना बरसे" की कहावत चरितार्थ हो रही है। इसके बाद भी केवाल इलाका पूर्व सामंतवादी समस्या एवं बलसुंदरी इलाका नव सामंतवादी उलझनों से ग्रस्त है। बहुफसली खेती एवं अंधाधुंध नलकूप निर्माण जोरों पर है।

पालि सुत्तपिटक में कसि भरद्वाज सुत्त है। भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण हल जोत रहा है, उसके सामने गौतम बुद्ध को अपने आप को आध्यात्मिक खेती करने वाला हलवाहा किसान सिद्ध करना पड़ता है।

जल की सामाजिक व्यवस्था

मगध क्षेत्र अनेक विचार धाराओं के उद्‌गम का केन्द्र रहा है। फिर भी भारतीय संस्कृति की व्यापक मान्यताओं को इस इलाके के समाज ने पूरी तरह स्वीकार कर रखा है। इसके अनुसार जल पर सबका अधिकार है। जीवित वर्तमान काल के मनुष्य के साथ-साथ पितरों, (जो मर चुके) देवताओं, जो सूक्ष्म हैं और आने वाली पीढ़ी सबका जल पर अधिकार है। इतना ही नहीं पशु-पक्षी, सभी प्रकार के जीव उन सबों के लिए भी जल की व्यवस्था करना एक धार्मिक मनुष्य का कर्तव्य है और धार्मिक न होना तो असामाजिक होना है। देव मनुष्य एवं सभी जीवों को जल से तृप्त करना (तर्पण करना) धार्मिक व्यक्ति का दैनिक कार्य है।

तालाब निजी और सामाजिक दोनों होते हैं। इसी तरह कुएँ चापाकल और नलकूप भी। इनसे भिन्न स्थिति नदी, नाले, पहाड़, पईन, आहर की होती है। ये सार्वजनिक है अतः इनकी जिम्मेवारी भी सार्वजनिक होती है। इनके निर्माण एवं जीर्णोद्धार को पुण्य एवं यश देने वाला माना गया है। जलाशय के निर्माण के बाद उसका विवाह करने की परंपरा है तभी उसका जल ग्रहण किया जा सकता है। विवाह के समान ही उत्सव एवं खर्च किए जाते है। जल दैवी देन है, उसकी बिक्री की तो बात ही नहीं हो सकती। आज सामाजिकता की भावना समाप्त हो रही है। इसकी विस्तृत चर्चा आगे की जाएगी।

बाभन, खारापानी, केवाल और जलाशय

मगध में खेती करना बुद्धकाल से ही मान्य था। यहाँ के ब्राह्मण भी हल जोतते थे। भूमिहार, बाह्मणों का (जो प्रचलित रूप में बाभन कहे जाते हैं) खेती से जबर्दश्त लगाव है। इनके गाँव की पास की जमीन अच्छी हो इतना पर्याप्त है। पेयजल के लिए इन्होंने

भूगर्भ जल पर निर्भर रहना जरुरी नहीं समझा। यही हाल कुर्मियों की है। अनेक बड़े-बड़े भूमिहार आबादी प्रधान कुएँ के जल खारे होते हैं। इन गाँवों की पेयजल व्यवस्था पोखर पर निर्भर थी। परिणामतः इन्हें तालाबों की अच्छी देख-भाल करनी पड़ती थी। पुराने राजपूत-चन्द्रवंशी (वर्त्तमान कहार नहीं) ढेकहा, लोहतमिया आदि मीठे पानी के क्षेत्र में रहना पसंद करते हैं, भले ही खेती थोड़ी कम उपजाऊ हो। १०-१२वीं सदी के चन्द्रवंशियों ने अनेक मंदिर और तालाबों की नगरी बनाई।

तालाबों के गाँव एवं नगरियाँ

तालाबों से भरी मगध की नगरियाँ निम्न थीं :- गया धाम, नालंदा, क्रौंचपुरी (कोंच), उदंतपुरी, वजीरगंज, उमगा-देव एवं पावापुरी। वैसे कई गाँवों में भी बड़े-बड़े तालाब बनाए गये थें। माएर- (शमशेर नगर, दाउद नगर) का तालाब बहुत बड़ा एवं यक्ष-यक्षिणियों द्वारा रक्षित सरोवर था। ये तालाब तेजी से लुप्त हो रहे हैं। मगध का पानी भी गुप्त हो रहा है।

मगध के प्रचलित जलाशयों के नाम एवं उनका उपयोग

प्राचीन संस्कृत प्राकृत एवं पालि ग्रंथों में निम्न प्रकार के जलाशयों की चर्चा आती है:-नदी, नद, निर्झरिणी (छोटे झरने), सरिता, वावी, कूप, तमग, ह्रद, पुष्कर, पुष्करिणी, आहर, दह, कुंड आदि। नदी, नद, सरिता लगभगं समानार्थक हैं। वापी बाबड़ी को कहते हैं। बड़े आकार के सीढ़ीदार सुसज्जित कुएँ बाबड़ी कहे जाते हैं। तड़ाग तालाब, समान है। आयताकार तालाब या वर्गाकार तालाब सभी मझ सकते हैं। ह्रद झरने से बने कुंड या तालाब को कहते हैं। हूद शब्द का प्रयोग प्रायः नैसर्गिक रूप से बने गहरे गड्ढ़े को ह्रद एवं आज की भाषा में दह कहा जाता है। पुष्कर-पुष्कारिणी शब्द बड़े एवं छोटे उन तालाबों के लिए प्रयुक्त होते हैं जिनकी साफ-सफाई एवं पवित्रता का विशेष ध्यान रखा जाता था। जो पवित्र करने वाला हो उसे पुष्कर कहा जाता है। पुष्कर से पोखर शब्द बना है। आहर उपर्युक्त से इस मामले में भिन्न है। आ अर्थात् सामने से जल का हरण करने वाले जलाशय को आहर कहा जाता है। यह मुख्यतः सिंचाई के काम में आता है। इसका निर्माण दो या तीन तरफ मेंड़ बनाकर किया जाता है। धान की फसल के बाद इसके पानी को निकालकर इसके अधिकांश भाग में रबी की फसल की खेती की जाती है। आहर के भीतर की अधिकांश जमीन रैयती होती है, मेड़ के पास का गहरा भाग एवं पिंड सार्वजनिक होती है। कुंड किसी भी गड्ढे को कहा जा सकता है।

गोआम

जलाशय निर्माण एवं उसकी सालाना मरम्मत के लिए आम आदमी का सम्मिलित प्रयास गोआम कहा जाता है। गोआम में श्रमदान एवं आर्थिक या सामग्री सहयोग सब सम्मिलित होते हैं। आज भी गोआम के प्रति विश्वास बना हुआ है किंतु अगुआई करने वाले बदल

रहे हैं। जमींदारों की जगह सामाजिक कार्यकर्त्ता एवं स्थानीय रंगदार अगुआई करने लगे हैं। कुछ जगह सरकार से मान्यता प्राप्त कमिटियाँ भी हैं।

गोहार

गोहार आपात्कालीन आमंत्रण पर जन समुदाय द्वारा अचानक इकट्ठा होकर आग, पानी या जानवर या मनुष्य से उत्पन्न संकट को रोकने की सामाजिक प्रणाली का नाम है। गोहार के लिए समाज का कोई भी व्यक्ति आवाज उठा सकता है, जिसे संकट दिखाई पड़े। इसमें नेतृत्व या वर्चस्व का संकट नहीं होता और न ही कोई पूर्व योजना होती है।

जल के उपयोग की परंपरागत नीति

नदी, जंगल एवं पहाड़ से आने वाले जल पर अधिकार के संबंध में अतीत काल से विवाद होते आ रहे हैं। भगवान बुद्ध के समय में शाक्यों एवं कोलियों के बीच नदी के जल को लेकर विवाद हुआ था। इस रक्तपात ने बुद्ध को करुणार्द्र बनाया। जल के स्वभाव में निहित है कि जब कभी वह आवश्यकता से अधिक उपलब्ध होता है तो नीचे की ओर उसे बहने देना पड़ता है। यही जब कम मात्रा में उपलब्ध होता है तो रोक कर उसका भंडारण करना पड़ता है।

प्रायः जलस्रोत के ऊपरी भाग के लोग बहने वाले पानी पर अपना पहला एवं पूरा हक मानते हैं। शेष जल से होने वाली हानि-लाभ पर विचार नहीं करना चाहते। निचले इलाके के लोगों का तर्क होता है कि जब अतिरिक्त जल हमारे इलाके से गुजरता है तो आने वाले पानी पर हमारा हक है। इसी बात को धार एवं निगार का सिद्धांत कहा गया है। निगार अर्थात नीचे बहाया जाने वाला अतिरिक्त जल। मगध की व्यापक मान्यता यही है कि जिधर से निगार निकलेगा उधर के लोगों की धार में भी हिस्सेदारी होगी। कोई भी व्यक्ति धार को पूरी तरह बंद नहीं कर सकता। यह नियम मुख्य रूप से प्रवाहमान जल पर होता है। तालाब/आहर या ताल में संचित जल पर उपयोग का हक अन्य आपसी निर्णयों से होता है।

सबसे उत्तम धारणाए तो जल को तीर्थ मानने वाली होती है जहाँ जलाशय निर्माण स्वहित के लिए नहीं परोपकार के लिए होता है जमींदार इसके भिन्न संकीर्ण दृष्टि रखते थे। पानी को लेकर होने वाले विवादों के बाद मुगलकाल में आबपासी की परम्परा कायम हुई। इसे आपासी भी कहते हैं। आपासी पानी के हक को कानूनी रूप देना होता है। कुछ पइनों को तीन-चार भागों में बाँटकर आठ आना, चार आना, दो आना जैसा बँटवारा होता था। कुछ जमींदार दूसरे इलाके में पानी जाने ही नहीं देते थें। सिंचाई या लघु सिंचाई विभाग के नियंत्रण क्षेत्र से बाहर के इलाकों पर आज भी प्रायः न्यायालय के निर्णय प्रायः धार एवं निगार की परंपरा तथा आबपासी रिकॉर्डों के आधार पर होते हैं

अध्याय तीन : नई चलन

सोन कमांड एरिया

ब्रिटिश काल में सोन नदी पर एनिकट में डिहरी के सामने बराज का निर्माण कर सोन के पूरब तथा पश्चिम, दोनों तरफ पटना (दानापुर) नहर एवं आरा तथा बक्सर नहर का निर्माण हुआ था। ये नहरें सिंचाई के साथ नौ परिवहन का कार्य करती थी। जंगल से लकड़ी एवं अन्य खनिज तथा बनोपज स्टीमर के माध्यम से ढो कर आरा, दानापुर, में रेल पर लादे जाते थे। आरा के लोडिंग यार्ड तक सीधी स्टीमर पहुँचती थी। नील की खेती इस इलाके में भी सब से कराई जाती थी एवं अंग्रेजों की छावनियाँ इंगलिश नाम से जानी जाती थी। आज भी इंगलिश नाम से अनेक गाँव है। मैं ने अपने बचपन में नील के हौजों के अवशेष देखें हैं।

बालू भरने से यह बैराज खराब हो गया बाद में इन्द्रपुरी में बैराज बनया गया। आज सारी नहरें इन्द्रपुरी से चलती हैं। मगध क्षेत्र में बाद में एक और नहर बनी जो दानापुर नहर से पूरब औरंगाबाद के इलाकों में सिंचाई करती है। इसकी शाखाएँ गया जिले के पश्चिमी इलाकों की सिंचाई करती हैं। कोंच प्रखण्ड सर्वाधिक लाभान्वित क्षेत्र है। इन नहरों से सिंचित होने वाला बड़ा भाग सोन कमांड एरिया के नाम से जाना जाता है। इसके पानी को और आगे टेकारी-कुर्था तक ले जाने के लिए मांग एवं आन्दोलन होते रहते हैं। बिहार सरकार का सिंचाई विभाग एवं 'सोन कमांड एरिया प्राधिकार' इस क्षंत्र की देखभाल करने वाली सरकारी इकाइयाँ हैं।

लघु सिंचाई योजना

सिंचाई विभाग के समानांतर लघु सिंचाई विभाग ने भी छोटे-छोटे बैराज बना कर कई बरसाती नहरें बनाई हैं। ऐसे बराज बटाने, मोरहर, निरंजना, सकरी, ढाढ़र आदि नदियों पर बने हुए हैं। चपरदह गाँव में यमुने पर बीयर बाँध भी है। बटाने, मोरहर, तिलैया आदि नदियों पर छोटे बराज हैं। इनसे बरसाती नहरें एवं पइनें निकाली गई हैं। नहर वाला निर्माण नया है किन्तु निमसर आदि स्थानों पर, पहले जहाँ कच्चा बाँध लगता था, वहीं बैराज बनाया गया है।

बैराज के स्वयं सोने वाले फाटक

इन बैराजों में दो प्रकार के फाटक लगे हैं। पहले बड़े, चौड़े आकार के जो पुली एवं गियर से उठाये जाते हैं। दूसरे छोटे आकार के हैं। उनकी पेंदी में जल का दवाब रहने पर वे

अवरोधक का काम करते हैं किन्तु पइन एवं नदी की रक्षा के लिए पानी बढ़ने पर वे स्वयं सो जाते हैं। सुरक्षा की दृष्टि से इनका बहुत महत्त्व है। इन्हें पुनः खड़ा करना पड़ता है। आलसी किसान एवं लघु सिंचाई विभाग के कर्मचारी इन्हें बहुत कोसते हैं। इनकी बनावट अति सरल है। बड़े फाटकों की मरम्मत एवं देखभाल ठीक ढंग से न होने से इनमें अनेक खराब हो गए हैं और कुछ के सामने सिल्ट जमा हो गई है। सोने वाले छोटे फाटक कम ख़राब हुए हैं।

सिंचाई शुल्क

बड़ी एवं सालो भर चलने वाली नहरों से सिंचित क्षेत्र में पानी के प्रवाह, रख-रखाव, सिंचित क्षेत्र की माप, छोटी वितरणियों एवं नालियों के स्थानीय सट्टेदार से लेकर सिंचाई शुल्क वसूलने वाले तक सरकारी कर्मचारियों की लंबी फौज है। पहले किसानों के साथ वर्ष में तीन फसलों - खरीफ, रबी तथा गरमा के लिए सात सालों का एकमुश्त करार होता था बाद में एक साल के लिए और अब प्रति एक फसल के लिए एकतरफा शुल्क दर निर्धारण की सरकारी चलन शुरू हुआ है।

लघु सिंचाई विभाग के बैराजों से सिंचित क्षेत्र के झमेले में सिंचाई शुल्क प्रायः विवादों में ही फँसा रहता है। किसानों का तर्क है कि सिंचाई का निश्चय हो तब शुल्क का निश्चय होगा। पहाड़ी नदियों के ये मौसमी बराज कभी भी निश्चिंत नहीं कर सकते कि पानी अवश्य मिलेगा ही। कई बैराज अर्धनिर्मित एवं विवादों के घेरे में हैं। एकता परिषद् एवं अन्य संगठनों ने तो इन्हें तोड़ने की खुली घोषणा की है। सरकार ने भी इसे स्वयं तोड़ने का आश्वासन दिया है। आम जनता में बैराज की माँग बढ़ रही है।

नलकूप

पहले वर्णित व्यवस्थाओं से आधुनिक होते हुए भी नलकूप आज एक पारम्परिक साधन हो चुका है। मैदानी भागों में नलकूप का विकास बहुत तेजी से हो रहा है, जो धान की रोपनी से लेकर रबी एवं नगदी फसल तक के लिए उपयोगी है। बिहारशरीफ के लोग पूरे बिहार में नलकूप बनाने में अपना स्थान आगे बनाए हुए हैं। हल्की और छोटी रिग मशीनों तथा हस्तचालित सयंत्रों द्वारा इनका निर्माण आसानी से हो जाता है। भूजल अन्वेषण के विशेषज्ञ एक सौ पचास (१५०) से दो सौ (२००) मीटर तक की गहराई के नलकूप को छिछला मानते हैं, जबकि यथार्थ में सिंचाई का जल इससे ऊपर ही मिल जाता है। नलकूप के प्रचलन में ग्राम निर्माण मंडल, सेखोदेवरा आश्रम कां योगदान उल्लेखनीय है। बिहारशरीफ की दो विरादरियों (कोइरी एवं कुरमी) का इस विधि के विकास में विशेष योगदान है। गया के नारायणी परिवार ने इसमें काफी रुचि ली है। आज अनेक नलकूप निर्माता हैं।

सिंचाई एवं पेयजल दोनों में नलकूप निर्माण ने निर्णायक परिवर्तन किया है। इससे लाभ एवं हानि दोनों ही जबर्दस्त हुए हैं। १९६७ के अकाल के बाद नलकूप को वैकल्पिक सिंचाई व्यवस्था के रूप में अपनाने की चलन बढ़ती गई। सरकारी एवं गैरसरकारी दोनों ही स्तरों पर नलकूप बनाने का सिलसिला चला। ग्राम निर्माण मंडल जैसी स्वयंसेवी संस्थाओं ने भी इसमें खूब रुचि ली। मगध क्षेत्र के पूर्वी तथा उत्तरी इलाकों में नलकूपों की संख्या बताना कठिन है। पहले बिजली चालित पंपिग सेटों से पानी निकाला जाता था किन्तु छोटे डीजल ईंधन से चालित पंपिंग सेटों के बाजार में सरलता से उपलब्ध होते ही लोगों का उत्साह इतना अधिक बढ़ा कि वे सामुदायिक सहभागिता आधारित सिंचाई प्रणालियों को पुराने जमाने की बेकार चीजें मानने लगे।

नलकूप निर्माण के लिए पथरीले क्षेत्रों में प्रयास कम ही हुए क्योंकि इससे खतरा अधिक था। जलोढ़ क्षेत्रों में गैरसरकारी इलाके में पहले नलकूप बने। इसके बाद तो कोई भी इलाका नलकूपों से वंचित नहीं रहा। नहरी ईलाकों की ऊँची जमीन एवं रबी, सब्जी आदि फसलों के लिए नलकूप बहुत उपयोगी रहे। सरकारी नलकूपों का भविष्य अंधकारमय हो गया। निजी नलकूपों की संख्या दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती जा रही है।

नलकूप जिसका प्रचलित नाम बोंरिंग है, कई प्रकार के होते हैं, जेसे - चापाकल/पेयजल हेतु कम व्यास के नलकूप। मिट्टी में ये सामान्यतः १.५'' से ३'' व्यास के होते हैं। ये Percussion विधि से बनते हैं, जिसे ढेंकी बोरिंग कहा जाता है। पहाड़ी इलाकों में अधिकांश ४.५'' एवं ६'' व्यास के नलकूप D.T.H. (Down the Hammer) मशीनों से बनाए जाते हैं। इनका प्रचलित नाम हीरा बोरिंग है। वस्तुतः इनके लंबवत् धुरमुस के आकार के हथौड़े में Tungsten Carbide की बीट लगी रहती है न कि हीरे की।

Mud Rotary (मडरोटरी) मशीनों से घूर्णन के साथ धारदार चाकू से मिट्टी बालू को काटकर उसे पानी/कीचड़ के दबाव से पंप की मदद से छिद्र से बाहर निकाला जाता है। इस विधि से छिद्र निर्माण बहुत प्रचलित है।

बिहार सरकार ने अमेरिका से ३ हजार फीट की गहराई तक नलकूप बनाने वाली मशीन का आयात किया था। उसे गया शहर में रखा जबकि पूरे दक्षिणी बिहार के जलोढ़ क्षेत्र में ४००'' से नीचे छिद्र बनाने की आजतक जरूरत ही नहीं पड़ी। इसका स्थानांतरण व्यय ही कई छोटे नलकूपों के निर्माण के खर्च से अधिक पड़ता है। आज की तारीख में इस मशीन की कीमत तीन करोड़ से अधिक होगी। ऐसी मशीन के अनुपयोगी सिद्ध होने पर रूस के इंजीनियरों के प्रोत्साहन पर बिहारशरीफ के कुछ लोगों ने देशी स्तर पर रिंग मशीनों का निर्माण किया। इस काम में नारायणी एवं नालंदा नामधारी फर्मों का आज

बर्चस्व है। बंगाल/उड़ीसा के मैदानी भागों में हस्तचालित रिग मशीनों की चलन बढ़ी जिसे लोग ओड़िया प्लांट कहते हैं। ग्राम निर्माण मंडल ने ऐसे यंत्रों को किराए पर देने की व्यवस्था कर किसानों के लिए इस काम को सुगम बनाया। नवादा के इलाके में कारीगर एवं यंत्र कम लागत पर उपलब्ध कराए जाते थे।

चापाकल ने पेयजल को घर के भीतर या आसपास सुलभ कराया तो साथ ही मच्छरों की संख्या में वृद्धि का मूल कारण बनाया। सोख्ता गड्ढ़ों के निर्माण को किसी ने महत्त्व नहीं दिया। सारा पानी गली-सड़क पर छोड़ने से गाँवों की दुर्गति हो गई। सिंचाई के लिए बने नलकूपों से भू-गर्भ जल के अत्यधिक दोहन ने जलस्तर को बहुत नीचे पहुँचा दिया। सामाजिक दृष्टि से नलकूप ने व्यक्तिवाद को बढ़ावा दिया और लोगों की रुचि सामाजिक सहभागिता में बहुत कम हो गई। इससे कम खर्च वाली सिंचाई प्रणालियाँ विफल होने लगी और अंततः सिंचाई लागत बेतहासा बढ़ी। डीजल चालित पंप सेटों वाले इलाके में धान की खेती फायदे की खेती नहीं रही। भू-गर्भ जल का जलस्तर इतना नीचे गिरा है कि अनेक स्थानों पर गर्मी में कुएँ एवं चापाकल सूख जाते हैं।

पहाड़ी इलाकों में चापाकल या बोरिंग कुँए से सस्ते होते हैं। फतेहपुर के इलाके में जहाँ माइका सिस्ट की भरमार है वहाँ पानी रिसाव से एकत्र होता है। ऐसी बनावट वाली जगहों में बोरिंग कराने की तुलना में बड़े आकार के कुएँ का निर्माण अधिक लाभकारी होता है। नलकूप निर्माण में लागत दो बातों पर निर्भर करती है, गहराई एवं पाईप। आजकल पथरीला एवं जलोढ़ दोनो ही क्षेत्रों में सिंचाई के लिए बनाए जाने वाले नलकूपों के निमार्ण की लागत लगभग बराबर आती है किन्तु पाईप की कीमत में कमी आई है। प्लास्टिक पाईप की कीमत लोहे की पाईप से बहुत कम होती है। आजकल तो सबमरसिबल पंप के लिए भी प्लास्टिक पाईप आने लगे हैं। इनके समानांतर कम गहराई वाले इलाके में बाँस की रीढ़ को हटाकर उसे पुनः बाँधकर उसे पाईप के रूप में काम में लाया जाता है। लोग इसे बाँस बोरिंग कहते हैं।

नलकूप निर्माण संबंधी गलत धारणाएँ एवं सही जानकारी

नलकूप निर्माण के बारे में कुछ लोगों को जानकारी नहीं होने से वे कई प्रकार की गलत धारणाएँ बनाए रखते हैं जिसके कारण उन्हें स्वयं भी परेशानी होती है और छेद करने वाले या पंप लगाने वाले के साथ भी अनावश्यक विवाद पैदा होता रहता है। अतः मोटी-मोटी बातों की जानकारी नलकूप निर्माण के पूर्व कर लेनी चाहिए और गलत धारणाओं से बचना चाहिए प्रमुख गलत धारणाएँ निम्न हैं :-

1. धरती में कहीं पर भी बहुत गहराई तक छेद कर देने से प्रचुर मात्रा में पानी अवश्य प्राप्त हो जाएगा।

पानी जमीन के भीतर छिद्रदार परतों, जोड़ों, संधियों एवं बालुका आदि जलोढ़ पत्थरों में पाया जाता है। यह १० फीट की गहराई से लेकर हजारों फीट की गहराई तक छेद करने पर प्राप्त हो भी सकता है या नहीं भी हो सकता है। जल की उपलब्धि जमीन की भीतरी बनावट पर निर्भर करती है, उसका गहराई से कोई सीधा संबंध नहीं है।।

२. ट्रक पर चलनेवाली बड़ी मशीन (कंप्रेशर वाली मशीन) हर प्रकार की जमीनी बनावट में छेद करने में सक्षम है।

ट्रक पर चलनेवाली अधिकांश मशीनें वायु दाब पद्धति पर काम करती हैं और जिस प्रकार की मशीनें व्यावसायिक चलन में है उनमें से अधिसंख्यक केवल पत्थरों में छेद करने के लिए उपयुक्त हैं। बालू, कीचड़ जैसी असंघटित परतों में यह मशीन काम नहीं कर पाती है। इसी प्रकार लुढ़कने वाले छोटे पत्थर एवं बजरी की परतों में भी यह मशीन उपयुक्त नहीं हैं। बालू, मिट्टी, कीचड़, महीन रेत इत्यादि की परतों के लिए जलीय घूर्णी (मड रोटरी) मशीन अधिक उपयुक्त है एवं छोटे-छोटे लुढ़कने वाले पत्थरों में ओडेक्स मशीन, परकुशन मशीन या कैलिक मशीन उपयुक्त होती है।

३. अधिक ताकत का मोटर या पंप लगाने से अधिक गहराई से पानी निकाला जा सकता है और वह पानी मशीन की ताकत के हिसाब से बढ़ सकता है।

पंप करने पर जो पानी निकलता है उसकी मात्रा एवं पंप की बनावट के साथ अन्य कई चीजें जुड़ी हुई हैं। सामान्यतः प्रचलित सेंट्रीफ्यूगल पंप से २५-३० फीट की गहराई से पानी निकाला जा सकता है चाहे वह एक हार्स पावर का हो या ३० हॉर्स पावर का। अधिक गहराई से पानी निकालने के लिए पंप का उचित जलस्तर तक पहुँचना अपरिहार्य है और यह जलस्तर विभिन्न स्थानों पर भिन्न होता है और उसी हिसाब से पंप को गहराई में लटकाया जाता है। इस संदर्भ में तकनीकी राय, विशेषज्ञ से अवश्य लेनी चाहिए।

४. कड़े पत्थर (जिंदा पत्थर) में छेद कर देने के बाद नीचे पाईप की आवश्यकता नहीं रह जाती है और हमेशा स्वच्छ जल प्राप्त होता रहता है। इस धारणा का समर्थन अपना व्यवसाय चलाने के लिए गलत किस्म के छेदकर्ता करते हैं। किंतु सच्चाई यह है कि कड़ी चट्टानों के बाद भी स्थानांतरण, मौसमी संक्षरण आदि के कारण किसी बड़ी शिला के नीचे भी मोरंग मिट्टी, बजरी या फेल्सपार (जो कड़ी मिट्टी की तरह होता है) पाया जा सकता है। वैसी परिस्थिति में कुछ दूरी तक जाने के बाद फिर मिट्टी मिला हुआ गंदा पानी आ सकता है या बगल से मिट्टी आदि खिसक कर छेद में चले जाएँ तो छेद भी बंद हो सकता है।

५. अधिक गहराई से पानी उठाने के लिए सर्वत्र कुआं काटना अपरिहार्य है।

आजकल विभिन्न उत्पादकों ने विभिन्न किस्म की पंपें बनाई हैं और अब नलकूप के भीतर ही पंप डाल दिया जाता है। बिना कुआं काटे भी ५० फीट से लेकर हजारों फीट की गहराई से पानी निकाला जा सकता है। कुआं काटा जाए या नलकूप में ही पंप डाल दिया जाए, यह जल स्तर की परिस्थिति पर निर्भर करता है। स्वयं बात समझ में न आए तो विशेषज्ञ से राय लेनी चाहिए।

६. एक बार बोरिंग हो जाने पर यदि पंप चलता रहता है, तो फिर उसकी मरम्मत आदि की जरूरत नहीं रह जाती है।

यह धारणा पूर्णतः गलत है। नलकूप एक प्रकार का कुआँ ही है, जो धरती के भीतर छोटे आकार का एवं गहरा है। जैसे समय-समय पर अन्य मशीनों की मरम्मत, सफाई आदि का काम करना पड़ता है, उसी प्रकार नलकूप की मरम्मत एवं सफाई का काम करना पड़ता है। कंप्रेसर चलाना आम बात है।

७. केसिंग पाईप से नीचे अधिक व्यास का छेद नहीं किया जा सकता है। अब ऐसा नहीं है, कई ऐसे बरमें है जो केसिंग पाईप से अधिक व्यास का छेद भीतर जाकर कर देते हैं।

८. कुआं बनाने की तुलना में बोरिंग करना प्रायः लाभकारी है। यह धारणा निराधार है। उन इलाकों में अधिक व्यास के कुंएँ नलकूप की तुलना में सही होते हैं जहां के जलभृत धीमी गति से पानी छोड़ते है।

९. बिना छेद किये हुए धरती के भीतर बनावट का पता नहीं लगाया जा सकता। अतः सही-सही जल स्रोत के खोज के लिए बार-बार छेद करना अपरिहार्य है।

यह धारणा सही नहीं है। केन्द्र एवं राज्य की सरकारें, कई स्वयंसेवी तथा व्यावसायिक संस्थान भूमिगत जलस्रोत का पता लगाते रहते हैं और लोगों को जानकारियां मुफ्त या शुल्क लेकर देते हैं। यदि इन संस्थाओं की मदद ली जाए और जहाँ पर नलकूप लगाना हो उस स्थान की जाँच करायी जाए तो जमीन की अंदरूनी बनावट एवं जल की उपलब्धता के बारे में काफी हद तक बिना छेद किए हुए जानकारी मिल जाती है। इससे बार-बार जमीन में छेद करने पर होने वाले खर्च एवं परिश्रम की बर्बादी से बचा जा सकता है।

१०. धरती में इतना अधिक पानी है कि हम नलकूप द्वारा जितना चाहें उतना पानी निकाल सकते हैं।

यह धारणा विवादास्पद है और आम आदमी के वश में नहीं है कि वह जितना पानी चाहे

निकाल ले। अनुभव में यह आ रहा है कि नलकूप द्वारा अधिकाधिक पानी निकालने के कारण क्रमशः जमीन के भीतरी जलस्तर नीचे की ओर बढ़ता चला जा रहा है और पुराने कुओं के सूख जाने की शिकायत आमतौर पर आ रही है। फिर भी यदि मौसम अनुकूल रहे और संतुलित मात्रा में पानी निकाला जाए तो दीर्घ काल तक भूमिगत जल का उपयोग किया जा सकता है।

११. हर तरह का पानी हर प्रकार की खेती करने के लिए उपयुक्त होता है। सिंचाई हेतु पानी की गुणवत्ता से कोई संबंध नहीं है।

यह धारणा अत्यंत ही खतरनाक है। अपने प्रदेश में इससे भले ही कोई संकट न हो, लेकिन अनेक स्थानों पर जमीन के भीतर से ऐसा पानी निकलता है जिसका रसायन किसी खास किस्म के पौधे के लिए उपयुक्त होता है लेकिन दूसरे पौधे के लिए हानिकारक भी हो जाता है। अतः नलकूप द्वारा सिंचाई करने पर यदि कोई अन्य किस्म की समस्या सामने आए तो विशेषज्ञ से अवश्य राय लेनी चाहिए। हो सकता है कि जमीन के भीतर से निकलने वाला पानी किसी हानिकारक रसायन या लवण से युक्त हो।

१२. १०० फीट से अधिक की गहराई से पानी निकालने के लिए कोई चापाकल नहीं बना हुआ है।

जिस इलाके का जलस्तर ऊँचा होता है, वहाँ के बाजार में सामान्य किस्म के चापाकल बिकते हैं लेकिन गहराई से भी पानी निकालने के लिए इंडिया मार्क-३ एवं अन्य किस्म के चापाकल बनाए गए हैं। यदि जलस्तर गर्मियों में बहुत नीचे चला जाता हो तो विकसित किस्म के चापाकल का उपयोग करना चाहिए इन्हें चलाने में कम भार पड़ता है और ये स्वास्थ्य की दृष्टि से भी बेहतर होते हैं। कीमत कुछ अधिक लगती है।

१३. जेट पंप लगाने के लिए ४ ईंच का बोरिंग अपरिहार्य है।

छेद का व्यास जितना बड़ा होगा उतनी सुविधा अवश्य होती है फिर भी छोटे पैकर टाइप के जेट पंप एवं ऐसे प्लंजर पंप हैं जिन्हें १.५ इंच तक के छोटे छेद में लगाया जा सकता है। इन्हें लगवाने के लिए जानकार मिस्त्री से सहयोग लेना चाहिए।

१४. एक ही छेद में चापाकल एवं पंप नहीं लगाया जा सकता है।

ऐसा अपरिहार्य नहीं है। अगर उसमें चापाकल और जेट पंप दोनों लगाना हो तो कम से कम ४ इंच का छेद आवश्यक होता है तभी सिलिंडर के साथ जेट पंप लगाया जा सकता है।

भू-गर्भ जल खोजने की विधियाँ

पृथ्वी के भीतर जल की विभिन्न अंतःस्रावी धाराएँ बहती रहती हैं। जिनका उपयोग मानव पेय जल, सिंचाई आदि के लिए करता है। पृथ्वी के ऊपर से ही अंतःस्रावी धाराओं एवं जल भंडारों को बिना खुदाई या छेद किए हुए खोजना आम आदमी के वश का नहीं है। फिर भी विभिन्न कालखंडों एवं भूखंडों में मानव ने भू-गर्भ जल का पता लगाने की कई विधियाँ विकसित की हैं, जिसमें अधिकांश पुरानी विधियाँ अप्रचलित हो गई हैं। भौम जल के अन्वेषण की विधियाँ अत्यधिक खर्चीली होती हैं। अतः सामान्य नलकूपों के लिए इनका प्रयोग करना कठिन हो जाता है। इन विधियों की विशेष उपयोगिता संस्तरों की सही बनावट, जलभृत की बनावट में अंतर, जल की गुणात्मकता के अन्वेषण की विशेष रूप से जरूरत हो या जहाँ जल प्रत्येक स्थान पर न मिलता हो अर्थात उनमें खारापन या विभिन्न लवणों की उपस्थिति हो तो उनका पता लगाने में या उसके एक दो जलभृतों को बंद कर शेष जल प्राप्त करने के लिए उपयोग में लाया जाता है।

भौम जल का सतही अन्वेषण

पानी खोजने की विधियों में निम्न प्रमुख हैं :-

१. विद्युत चुंबकीय तरंग विधि :- इस विधि में पृथ्वी की ऊपरी सतह से विद्युत उपकरणों के द्वारा विद्युत चुंबकीय तरंग संप्रेषित कर, उन्हें लौटाया जाता है, जिसके जाने और लौटने के समय एवं उसके द्वारा बने चित्र के आधार पर भूगर्भ में स्थित जल का पता लगाया जाता है।

२. उपग्रह द्वारा पृथ्वी की भीतरी बनावट का सचित्र अध्ययन किया जाता है। जिसमें अन्य पदार्थों के साथ-साथ जल धाराओं का भी पता चल जाता है।

३. भू-भौतिक अन्वेषण :- इससें किसी बड़े क्षेत्र का ज्ञान होता है। निश्चित बिंदु के लिए अन्य विधियाँ अपनानी होती हैं।

(क) विद्युत प्रतिरोधक विधि :- इस विधि में शैल समूह की विद्युत प्रतिरोधकता विद्युत प्रवाह भेजकर ज्ञात की जाती है। अलग-अलग शैल समूहों की बनावट के आधार पर उनकी प्रतिरोधकता अलग-अलग होती है। इस आधार पर पृथ्वी के अंदर उपस्थित जलभृतों का पता लगाया जाता है।

(ख) भूकंपी परावर्तित तरंग विधि :- जब पृथ्वी के किसी एक स्थान पर डायनामाइट या किसी और विस्फोटक से प्रघात किया जाता है और ५०० मी. से कुछ कि.मी. तक की दूरी पर उसकी तरंगों को नापा जाता है कि वे किस वेग से लौट रही

हैं। ये तरंगे पृथ्वी के विभिन्न सतहों से टकराकर थोड़े-थोड़े समय के अंतराल पर लौटती हैं जो परावर्तित एवं आवर्तित होकर आती हैं। इनके आधार पर पृथ्वी की संरचना का पता लगाया जाता है। संरचना के आधार पर जलभृत का पता चल जाता है। यह विधि किसी बड़े भूभाग के लिए तो उपयुक्त है लेकिन किसी एक बिंदु के निर्णय के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है।

(ग) गुरुत्वाकर्षण तथा चुंबकीय विधि :- गुरुत्वाकर्षण विधि द्वारा पृथ्वी की भीतरी परतों के घनत्व के परिवर्त्तनों को नापा जाता है ताकि भौमिकी संरचना ज्ञात हो सके। चुंबकीय विधि द्वारा पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्रों का मानचित्र बनाया जा सकता है किंतु यह विधि भौम जल ज्ञात करने की परोक्ष विधि है।

(घ) भू-वैज्ञानिक विधियाँ :- किसी स्थान पर जल का पता लगाने के लिए उस पूरे क्षेत्र के भौतिक बनावट का अध्ययन किया जाता है। जिसमें पहाड़ की ढाल, घाटियों, नदी का जल प्रवाह, उस क्षेत्र में अपरदन एवं निक्षेप इत्यादि का पता लगाकर भू-गर्भ में उपस्थित शैल समूहों, मिट्टी, बालू, बजरी इत्यादि का सही अंदाज लगाया जाता है, जिसके आधार पर जलभृत की उपस्थिति का पता लगाया जाता है। यह विधि अन्य विधियों के लिए सहायक सूचना उपलब्ध कराती है।

इन सारी विधियों को एक साथ न तो किसी स्थान पर प्रयुक्त किया जा सकता है और न ही हरेक स्थान के लिए हर विधियाँ उपयुक्त होती हैं। भौम जल की उपस्थिति का पता लगाने की वैज्ञानिक विधियों में भू-भौतिक एवं भू-गर्भ की बनावट की सही जानकारी का पता वहाँ के परीक्षण वेधन के द्वारा अंतिम रूप से लगाया जाता है।

४. भौम जल हेतु भूमिगत अन्वेषण :- उपर्युक्त विधियों के अलावा छिद्र निर्माण के बाद की स्थिति का सही पता लगाने एवं जल की रासायनिक संरचना को ज्ञात करने के लिए भूमिगत जल अन्वेषण की कई विधियाँ प्रचलित हैं, जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं :-

(क) परीक्षण वेधन
(ख) प्रतिरोधकता संलेखन
(ग) विभव संलेखन
(घ) तापक्रम संलेखन
(ङ) केलीपर संलेखन एवं
(च) विकिरण संलेखन विधियाँ, जिनमें गामा एवं न्यूट्रान किरणों पर आधारित रेडियो एक्टिव संलेख विधि भी है। इनका उपयोग मुख्य रूप से पेट्रोलियम उद्योग में होता है।

समस्याएँ

पूर्ववर्णित सारी सिंचाई व्यवस्थाओं में से कुछ व्यवस्थाएँ बरबाद हो रही हैं। यदि अभी समुचित ध्यान नहीं दिया गया तो अगले पच्चीस वर्षों में ये समाप्त हो जाएँगी।

पइन की देख-रेख एक लंबे भूभाग में करनी पड़ती है। यह कच्ची होती है तथा इसमें बालू भर जाता है, जिसकी नियमित उड़ाही करनी पड़ती है। किनारों को भी टूटने से रोकना पड़ता है। पहले ये सारे काम जब इलाके के जमींदारों के जिम्मे थे तो हो जाते थे। आज ये बिहार सरकार के अधीन हैं। इन पर अधिकारियों का ध्यान नहीं होता। जब किसी क्षेत्र में आंदोलनात्मक रुख अपनाया जाता है तभी पइन मरम्मत की खानापूरी होती है। कई जगहों में पूर्व जमींदार या रंगदार लोग आहर-पइन को भर कर मकान और खेत बना रहे हैं। जबकि इस व्यवस्था को सुरक्षित रखना आवश्यक है।

आहर-पइनों के प्रबंधन एवं संरक्षण में सरकारी उपेक्षा के कारण आम आदमी की जिम्मेदारी एवं भागीदारी काफी बढ़ गई है। इनकी मरम्मत हेतु समितियाँ बनती हैं, चंदे उगाहे जाते हैं और तब मरम्मत का काम होता है। कहीं-कहीं बड़े-बड़े आहर एवं पोखर के पिंडों (बाँध) को गैरमजरुआ मान कर उन पर 'भूमिहीनों' को बसाया जा रहा है जो तनाव का कारण बन रहा है। गाँव के कुछ स्वार्थी तत्त्व आहर-पोखर को काट कर अपने खेतों में मिला ले रहे हैं या पइन का पानी अधिक लेने का प्रयास कर रहे हैं। इससे भी तनाव उत्पन्न हो रहा है। इन समस्याओं को जनजागृति तथा आपसी समझौतों द्वारा हल करना आवश्यक है।

जल संबंधी गलत नीतियाँ

सामाजिक समझ, चलन, कानूनी व्यवस्था के साथ राष्ट्रीय जल नीति तक में कई गलत नीतियों एवं मान्यताओं का समर्थन किया गया है, जिसके बुरे परिणाम सामने हैं और आगे भी खतरा महसूस हो रहा है। इन नीतियों में वस्तुतः प्रभावशाली वर्ग की विलासिता को पूर्णतः सुरक्षित करने की नीयत साफ झलकती है। इसी तरह विभिन्न संस्थाओं द्वारा विज्ञान प्रौद्योगिकी, प्रबंधकीय अनुभव, आधुनिक विकास, मुक्त बाजार आदि के नाम पर जन विरोधी भ्रामक सूचनाएँ प्रकाशित हो रही हैं और समाज विरोधी तत्वों को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष समर्थन दिया जा रहा है। ऐसी कुछ बातों पर ध्यान देना जरूरी है। इनका संक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है :-

१. कूप या नलकूप को बाजारू सामग्री के रूप में समझने का प्रयास।
२. धर्म की परोपकारी या पुण्यलाभी दृष्टि का कोई भावनात्मक विकल्प प्रस्तुत किए बगैर, प्राचीन संरक्षणवादी दृष्टि का खंडन।

३. जलाशयों को मल विसर्जन स्थान के रूप में देखना और उन्हें नष्ट करना।

४. राष्ट्रीय जलनीति में सरकारी संस्थाओं/उपक्रमों को सारे अधिकार सौंपना एवं नियामक बनाना एवं थकान या विफलता के बहाने जलस्रोतों तथा उनकी व्यवस्था एवं बिक्री का अधिकार बड़ी कंपनियों एवं पूँजीपतियों को सौंपना।

५. विभिन्न भू-जल बोर्ड द्वारा नलकूप निर्माण को हतोत्साहित करने के विपरीत असीमित जलदोहन हेतु पर्चे पोस्टर बाँटना एवं गोष्ठियाँ करना।

६. लोक स्वास्थ्य अभियंत्रण विभाग के गैर तकनीकी मानक, जैसे - बिना जलस्तर जाने बोरिंग कराना। भू-जल खोज हेतु वैज्ञानिक या तकनीशियन को बहाल न करना।

७. केन्द्रीय एवं प्रादेशिक भू-जल बोर्ड की अनुशंसाओं की अनदेखी करना। प्राकृतिक संरचनाओं का ध्यान रखे बिना जलाशय, बैराज, बाँध आदि का राजनैतिक आधारों पर निर्माण।

८. तालाबों की सफाई, उड़ाही की जगह सौंदर्यीकरण के नाम पर उनके आकार को छोटा किया जाना।

९. तालाबों, आहर, पोखर, पइन जैसी परंपरागत सिंचाई प्रणालियों को कालबाह्य जमीन घेरनेवाला, मच्छर फैलानेवाला फालतू संसाधन मानकर उनपर भवन, कॉलोनी, पार्क आदि का निर्माण।

१०. सिंचाई आयोगों द्वारा तैयार रिर्पोट का स्वरूप स्पष्ट होना। इससे न तो पंचायत न ही जिला स्तर की किसी योजना का निर्माण किया जा सकता है। इसके आंकड़ो की न तो परीक्षा संभव है न चुनौती। इससे भिन्न केन्द्रीय भू-जल बोर्ड एवं प्रांतीय भू-जल बोर्ड के आंकड़ों एवं सूचनाओं को कोई महत्त्व नहीं दिया गया है।

यह कैसी वैज्ञानिकता ?

भूजल भूगर्भ जल को कहा जाता है और ऊपर बहने वाले जल को आधुनिक सायंस एवं टेक्नॉलोजी वाले सतही जल कहते हैं। लघु सिंचाई, लोक स्वास्थ्य अभियंत्रण विभाग, नगर निगम,नगर पालिकाएँ तो नलकूप बनाने के अलावा पेयजल की अन्य व्यवस्थाओं में रुचि ही नहीं लेतीं जबकि उन्हें सर्वाधिक सचेत होना चाहिए।

सारी सच्चाई जानने के बाद भी जैसे बड़े बाँधों के पक्ष में ही तर्क देना इंजीनियरों का दायित्व हो गया है उसी प्रकार नलकूप के बारे में भ्रामक पर्चा-प्रचार एवं गोष्ठी का कार्य केन्द्रीय भूजल बोर्ड की पटना इकाई ने २००६ के गर्मी के दिनों में किया। हास्यास्पद एवं शर्मनाक स्थिति उस गोष्ठी की तब हो गई जब गया शहर के नगरवासियों को जहाँ ६०० फीट तक नलकूप सूखे जा रहे हों समझाया जाने लगा कि जमीन के अंदर पर्याप्त ही नहीं प्रचुर मात्रा में जल उपलब्ध है। कौन और कैसे माने इनकी बात ?

सरकारी पदाधिकारियों ने खुलेआम कहा कि जब नलकूप निर्माण हेतु राशि उपलब्ध है तो निर्माण क्यों नहीं? सरकार में नलकूप निर्माण हेतु राशि की योजना बनाई जाती है किन्तु नलकूप निर्माण हेतु स्थान निश्चित करने के लिए कर्मचारी रखना एवं कर्मचारियों से काम लेना जरूरी नहीं माना जाता क्योंकि ऐसा करने पर तो नलकूप निर्माण का गोरख धंधा ही बंद हो जाएगा।

सायन्स एवं टेक्नॉलोजी लोगों को डराने के लिए अधिक, जनता की राशि बचाने के लिए कम किया जाता है। थोड़ी देर के लिए यह मान भी लें कि वर्त्तमान अभियंताओं को उतना तकनीकी ज्ञान नहीं है तो उनका प्रशिक्षण क्यों नहीं होता? बोरिंग निर्माण कराने वाले अभियंताओं को अवश्य प्रशिक्षित किया जाना चाहिए कि वे विभागों में बरबाद हो रहे टेरा मीटर व अन्य का उपयोग कर नलकूप निर्माण हेतु उपयुक्त स्थान का चयन करें। स्वयं न कर पाने पर भी भूजल की खोज करनेवाली सरकारी/गैरसरकारी संस्थाओं की रपटों एवं संस्तुतियों का पालन सख्ती से होना चाहिए।

तालाबों का सौंदर्यीकरण या सत्यानाश

आजकल सरकार के द्वारा तालाबों के सौंदर्यीकरण की विचित्र अवधारणा विकसित हो रही है। इसके अंतर्गत तालाबों को चाहरदीवारी के अंदर कर उसकी मेड़ को बराबर कर बिजली-बत्ती का प्रबंध किया जाता है। यहाँ तक की बात तो ठीक है किन्तु उसके आगे की दृष्टि बहुत घातक है।

तालाब की ठीक से न तो उड़ाही की जाती है और न उसमें वर्षा जल के प्रवेश एवं निकास की व्यवस्था की जाती है। वर्षा जल के संग्रह के अभाव में तालाबों को जल संभरण का साधन न बना कर उसे जल को बरबाद करने वाला बनाया जाता है। सौंदर्यीकृत तालाब में बड़े ट्यूबवेलों से पानी भरा जाता है। गया-बोधगया के तालाबों के बारे में अपने को महान बतानेवाले वास्तुविदों एवं इजीनियरों की यही उल्टी सोच है।

इस प्रक्रिया में अनावश्यक पंप चलाने के लिए उर्जा की खपत होती है। वर्षाजल से भरे जाने वाले तालाब भूमिगत जलस्तर में वृद्धि करते हैं तो पंप से भरे जाने वाले ऐसे तालाब भूमिगत जल, जो दुर्लभ पेयजल है, उसे हवा एवं धूप में वाष्पीकृत होने का अवसर देते हैं। सौदर्यीकरण की ऐसी योजनाओं को अविलंब बंद किया जाना चाहिए। इतना ही नहीं पंप की व्यवस्था न होने पर ऐसे तालाब सूख जाते हैं और उनमें अतिक्रमण होने लगता है।

अध्याय चार : जनाधारित प्रयास

आहर, पइन, तालाब, कुएँ, बाबड़ी आदि बनाना परंपरा से धार्मिक कार्य माना जाता है। कुएँ का तो बाकायदा विवाह होता था। तीर्थ का दूसरा अर्थ ही है जल। निर्माण कार्य हो जाने के बाद उसकी मरम्मत, रखरखाव का कार्य भी उतना ही जरूरी होता है। परंपरागत तरीका यह है कि जमींदार, गाँव के अग्रणी समाजसेवी या किसी भी जागरुक व्यक्ति के आह्वान अथवा पूर्व निर्धारित तिथि को सभी लोग अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार मरम्मत के कार्य में लगते हैं। इसे 'गोआम' कहा जाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अनेक इलाकों के किसानों ने अपनी पहल पर इस परंपरा को जारी रखा तो कुछ इलाकों में स्वयंसेवी संगठनों/संस्थाओं ने भी इसमें अपनी भागीदारी बढ़ाई। 'गोहार' शब्द आपातकालीन पुकार है। इसमें सब का हक बराबर है। जिसने भी पइन-आहर पर खतरा देखा या महसूस किया उसने गोहार लगाई अर्थात आवाज दी।

जलसमस्या के समाधान हेतु जनाधारित प्रयासों के उदाहरण

१९६४ का अकाल पानी की व्यवस्था के विषय में निर्णायक परिवर्त्तन करने वाला हुआ। उस समय परंपरागत एवं आधुनिक दोनों ही उपायों का सहर्ष स्वागत किया गया। हरित क्रांति की यह पृष्ठभूमि बना। उस समय बिहार रिलीफ कमिटी के बैनर के अधीन अनेक संस्थाओं ने काम किया। आहर-पइन की उड़ाही-मरम्मत के साथ-साथ कुछेक नए आहरों के निर्माण भी कराए गए कुछ संस्थाओं ने परंपरागत सिंचाई प्रणालियों के समानांतर भू-गर्भ जल के दोहन को उचित माना एवं नलकूप लगाने का आन्दोलन ही चला दिया। इसे आधुनिक विज्ञान के चमत्कार जैसा महत्त्व प्राप्त हुआ। चापाकल पेयजल के लिए वरदान लगा। बिजली आधारित सिंचाई में तो माले मुफ्त दिले बेरहम की भावना उसी समय से आने लगी थी। ग्राम निर्माण मंडल ने तो बाकायदा कम किराए पर कारीगर, बोरिंग प्लांट, कंप्रेसर आदि की सारी सुविधा उपलब्ध कराई।

नलकूपों की व्यक्तिवादिता के सामने सामूहिकता धीरे-धीरे पराश्त होने लगी। मगध क्षेत्र में भी बड़े बाँध एवं नहरों की माँग बढ़ी। इनमें उत्तर कोयल परियोजना, तिलैया-ढाढर परियोजना, बटाने जलाशय संबंधी माँगें प्रमुख हैं। इनके साथ-साथ बाम इंडिया, लोक जागरण, समन्वय आश्रम, सर्वसेवा फार्म, ग्राम निर्माण केन्द्र, सत्यपथ आदि संगठनों ने भी लगातार प्रेरक एवं संगठक की भूमिका अदा की।

१९९० में वराह मिहिर संस्थान ने भू-जल अन्वेषण एवं जल संरक्षण के क्षेत्र में काम शुरू किया। इसने सैंकड़ो स्थानों पर बोरिंग हेतु स्थल चयन तथा मार्गदर्शन का कार्य जनसहभागिता एवं न्यूनतम शुल्क पर किया।

हाल के दिनों में कई स्थानों पर जन आधारित कार्यक्रमों, अभियानों को उल्लेखनीय सफलता मिली और जनता ने इनका लाभ भी उठाया। इससे सामुदायिकता पर आधारित गोआम प्रथा का महत्त्व स्वयं स्थापित होने लगा। इस प्रकार के कार्य मगध के अनेक इलाकों में हुए, किन्तु संस्थागत समर्थन के कारण निम्न कार्य अधिक चर्चित हुए।

एकता परिषद के लोगों ने श्रमदान से पइन आहर-उड़ाही का काम कई स्थानों पर किया। श्री राजगोपाल जी ने दसइन पइन में स्वयं श्रमदान किया। शहीद सरिता-महेश ने फतेहपुर के पठारी क्षेत्र में फैली पइन एवं शाखाओं की उड़ाही तथा मरम्मत के लिए जन आन्दोलन चलाया और उड़ाही का काम संपन्न भी हुआ। बाद में इसमें सरकारी पदाधिकारी तथा जिला स्तरीय राजनैतिक लोगों के सम्मिलित होने से कई प्रकार की भ्रांतियाँ एवं विवाद भी उपजे जिसका दुष्परिणाम सरिता-महेश को शहीद होकर चुकाना पड़ा। इन सबके बावजूद यह प्रयास सार्थक और सराहनीय रहा।

इसी तरह का सफल प्रयास श्री चन्द्रभूषण के नेतृत्व में खिजरसराय के इलाके में हुआ। फल्गु नदी से निकलने वाली रौनिया पइन की उड़ाही से किसानों की जिंदगी में खुशहाली आई एवं मनोबल बढ़ा। इसके बाद तो श्री चन्द्रभूषण के नेतृत्व में खिजरसराय एवं बेला के इलाके में लगभग १० पइनों की उड़ाही की गई। यह सब जन सहयोग एवं सत्यपथ संस्था द्वारा जुटाई गई सहायता की राशि से संपन्न हुआ। लंबे समय से उपेक्षित एवं ध्वस्त होती पुरानी पइनों का उद्धार सुखाड़ झेल रही जनता के ही एक मात्र सहयोग पर होना बहुत कठिन है। अतः किसी ने सरकारी तो किसी ने गैर सरकारी स्रोतों से धन का सहयोग प्राप्त किया।

इसी तरह का प्रयास जनहित समिति के द्वारा नवादा जिले में एम.पी. सिन्हा के संयोजन में संपन्न हुआ। इसमें बाहरी दान एवं स्थानीय सहभागिता दोनों का समन्वय हुआ। सकरी नदी से निकलने वाली पइन चार भागों में बँटकर आसपास के १२ गाँवों में सिंचाई का काम करती है। इसके जीर्णोद्धार से नवादा के इस इलाके के लोग काफी लाभान्वित हुए। बाँके बाजार के इलाके में श्री सुरेन्द्र पाठक ने सरकारी योजनाओं के सफल उपयोग एवं जन सहयोग दोनों के सफल संयोजन से जल समस्या के समाधान के अच्छे प्रयास किए इनकी सूची बहुत लंबी है। गत दो तीन वर्षो में उपेन्द्र जी एवं मित्र मंडली के संयोजन में वंशीनाला-पाले पइन के जीर्णोद्धार का कार्य चल रहा है। यह एक लंबी पइन है। इसका काम अभी पूरा नहीं हुआ है। इसमें सरकारी योजना से सहायता एवं जन सहयोग दोनों का समन्वय किया गया है। चन्द्रभूषणजी ने फल्गु के पश्चिमी किनारे वाली दसइन पइन की उड़ाही का कार्य प्रारंभ किया है।

बड़की पइन, बंधुआ पइन, ननौक पइन, दसईन पइन की उड़ाही तथा ढाढर नदी से धरहरा के इलाके में नई पइन निर्माण हेतु लगातार प्रयास चल रहा है। इस कार्य में रवीन्द्र कुमार पाठक, काली मंदिर न्यास के लोग एवं पुरानी पइन कमिटी तथा एकता परिषद के लोग अभी भी सक्रिय हैं। चन्द्रभूषणजी, जगत भूषण, उपेन्द्र कुमार, महेन्द्र यादव आदि लोगों के द्वारा जनसहयोग से हिलसा, फतेहपुर, नवादा, हसपुरा बंधुआ आदि के इलाकों में भी पइन, आहर, तालाब, की मरम्मत की खबरें हैं। अन्य प्रयासों के अल्प चर्चित होने से उनका पूरा विवरण दे पाना संभव नहीं है।

उग्रवाद के लिए बदनाम माओवादियों ने भी बाराचट्टी के भीतरी इलाकों में जनसहयोग से बड़े आहर का निर्माण किया है। इस प्रकार इस समय पानी की समस्या के समाधान के लिए लोगों को एकजुट करने एवं उपलब्ध सरकारी तथा गैर सरकारी संसाधनों के सदुपयोग के लिए कई प्रकार के लोग अपनी रुचि की शैली में प्रयासरत हैं।

मगध जल जमात

मगध क्षेत्र में पानी के समस्या के समाधान हेतु प्रयासरत इस जमात की अपनी एक सुविचारित नीति है, जो मगध क्षेत्र की जल नीति नाम से प्रकाशित एवं प्रसारित है। कोई भी व्यक्ति या संस्था जो इन नीतियों से सहमत हो उसका जमात में स्वागत है। इस मंच का उद्देश्य जनता के अभिक्रम को जगाना एवं जल संरक्षण के लिए आन्दोलन खड़ा करना है। सारे कार्यक्रम स्वैच्छिक दान एवं चंदे से चल रहे हैं। नगद की जगह सामग्री के रूप में सहयोग एवं सहभागिता को प्रोत्साहित किया जाता है। इसलिए इसका कोई स्थायी संविधान, संस्थागत ढाँचा, कार्यालय, कोष या खाता नंबर नहीं है। समय-समय पर कार्यालय एवं संयोजक भी बदलते रहेंगे।

मगध क्षेत्र की जल नीति की आवश्यकता

पुरानी सिंचाई प्रणाली, नई चलन, नई-पुरानी समस्याएँ और समाधान के निए प्रयासरत लोगों को एक मंच पर लाने की कोशिशों के साथ कुछ सवाल उभर कर सामने आए जिन पर गंभीर मंथन एवं निष्कर्ष की आवश्यकता हुई, जैसे -

१. क्या जमींदारों की अगुवाई वाली गोआम प्रथा सही है? जल का लाभ किसान उठाते हैं, गरीब मजदूर गोआम में क्यों भाग लें?
२. आबपासी (आपासी) पानी पर अधिकार कहाँ तक ठीक है?
३. दो जल उपभोक्ता क्षेत्रों के टकराव के बीच निर्णय का अधार क्या हो?
४. गरमा खेती से रोजगार तो मिलता है किंतु कुछेक चापाकल सूखते भी हैं। किसे प्राथमिकता मिले ?

५. राष्ट्रीय जल नीति मगध के लिए कितना प्रासंगिक है?

६. क्या सरकार को निर्णय के सारे अधिकार दे देने चाहिए?

७. वर्त्तमान समाज एवं उसकी आवश्यकताओं के बीच सन्तुलन हेतु नीति निर्धारक सिद्धांत क्या हों ?

८. क्या सही है, आहर-पइन या बोरिंग? बाँध बने न बने? बने तो कहाँ बने ?

ऐसे अनेक प्रश्नों को ध्यान में रखकर तय किया गया कि मगध क्षेत्र के लिए एक जलनीति होनी चाहिए इसके प्रारूप पर विस्तृत चर्चा के बाद उसे अंतिम रूप दिया जाना चाहिए प्रारूप लेखन के लिए पाँच सदस्यीय कमिटी बनाई गई। उस प्रारूप पर कई गोष्ठियों, कार्यशालाओं एवं निजी स्तर पर विचार करने के बाद उसे पुनः संपादित किया गया। इस जल नीति को परिशिष्ट के रूप में इस पुस्तिका के अंत में दिया गया है। इसमें मुख्यतः मगध क्षेत्र की बनावट, पानी पर अधिकार, उससे उत्पन्न होनेवाली दुविधा की स्थिति में प्राथमिकता के आधार पर निर्णय तथा अन्य सुझाव सम्मिलित किए गए हैं।

मगध जल जमात द्वारा जारी अभियान

मगध जल जमात नें चार सूत्री कार्यक्रम प्रारंभ किए -

१. समानधर्मी लोगों को एक मंच पर लाना।

२. चर्चा, गोष्ठी एवं अन्य माध्यमों से वैचारिक तथा नीतिगत मामलों को स्पष्ट एवं व्यवस्थित करना।

३. साहित्य, पर्चे, पोस्टर आदि प्रकाशित प्रसारित करना।

४. जन सहयोग आधारित अभियानों का आह्वान तथा अन्य अभियानों का समर्थन/सहभागिता।

तालाब उड़ाही अभियान

गया शहर के लोगों की एक बैठक दि. अप्रैल २००६ को मिर्जा गालिब कॉलेज में हो रही थी। उपस्थित लोगों का आग्रह था कि हमलोगों को न केवल प्रशासन पर निर्भर रहना चाहिए बल्कि स्वयं अपने स्तर पर भी ऐसा ही काम करना चाहिए जो आगे के लिए जल संरक्षण करने वाला हो। बैठक में उपस्थित लोगों की सर्वसम्मति से यह बात तय हो गई कि ब्रम्हयोनि पहाड़ी से सटे हुए जो तालाब नष्ट हो रहे हैं उनकी मरम्मत कर उन्हें जल संरक्षण के योग्य बनाया जाए। चूँकि ये तालाब सरकारी स्वामित्व में हैं अतः यह आवश्यक है कि प्रशासन से मिलकर चर्चा की जाए और यदि उसका रुख सकारात्मक हो तो उसे भी सम्मिलित किया जाएँ साथ ही यह भी निर्णय लिया गया

कि यह कार्य पूर्णतः जनसहयोग एवं श्रमदान से किया जाएगा। इसमें किसी प्रकार की सरकारी योजना की राशि नहीं ली जाएगी, न ही कोई ठेकेदार बहाल होगा।

इस निर्णय के साथ ही लोगों का उत्साह बढ़ता गया। इस उड़ाही अभियान का नेतृत्व शहर के बुजुर्ग समाजसेवी एवं वकील श्री शिव बचन सिंह, अधिवक्ता को सौंपा गया। सुयोग से तत्कालीन जिला पदाधिकारी श्री संदीप पौंण्ड्रीक ने भी इसमें काफी रुचि ली और हमारी शर्तों से सहमत हो गए हमलोगों ने ब्रम्हयोनि की उत्तरी तलहटी के ६ तालाबों के जीर्णोद्धार का संकल्प लिया। इसे युद्ध स्तर पर पूरा करने के लिए १ मई से १५ मई तक १५ दिनों का श्रमदान चला और समय सीमा में मुख्य कार्य संपन्न हो गए।

तालाबों की मरम्मत के काम को एक आन्दोलन का रूप देने का प्रयास किया गया। इसमें सरकारी, गैर सरकारी संस्था, संगठन, स्कूल, कॉलेज के कर्मचारी, छात्र तथा निजी स्तर पर भी अनेक लोग सम्मिलित हुए शहर के स्कूल, कॉलेज के छात्रों, कर्मचाारीयों के अतिरिक्त इंडियन मेडिकल एशोसिएशन, चैंबर आफ कामर्स, बार काउंसिल, होमियोपैथिक चिकित्सक संघ, पसमांदा मुस्लिम महाज, विभिन्न क्रीड़ा संघ, एकता परिषद्, समर्पण, आसरा आदि संस्थाएँ, सी.आर.पी.एफ. बिहार राज्य अराजपत्रित कर्मचारी महासंघ आदि ४८ संस्था एवं संगठनों ने भाग लिया। इनके समानांतर आर्मी सर्विस कोर के जवानों ने दो तालाबों की सफाई की। श्रमदान के साथ-साथ जिला प्रशासन ने बतौर चंदा बैंकों से राशि माँग कर औजार उपलब्ध कराए तथा गैमन कम्पनी से एक जे.सी.बी. मशीन की सेवा मदद के रूप में भी हासिल हुई।

मशीन एवं श्रमदान से बचे सारे अधूरे कार्य प्रसिद्ध समाजसेवी श्रीमती सुशीला सहाय ने अपनी राशि से स्वयं उपस्थित रहकर पूरा कराया। चंदा के रूप में श्रीमती सुशीला सहाय के ट्रस्ट, इंडियन मेंडिकल ऐसोसिएशन के अतिरिक्त डा० फरासत हुसैन, स्वामी राघवेन्द्रचार्य एवं अन्य तीन लोगों से ही राशि प्राप्त हुई। कोर कमिटी के सदस्यों ने संयोजन का भार एवं खर्च स्वयं उठाया। प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक दोनों ही मीडिया के लोगों ने श्रमदान में सहभागिता के साथ-साथ इस अभियान को पूरा समर्थन दिया।

गया शहर के तालाब भी अन्य शहरों के तालाबों की तरह ही अतिक्रमण, गाद भरना, पिंड/मेड़ का टूटना, गंदे पानी का जमाव आदि संकटों से ग्रस्त हैं। वर्ष २००६ के अभियान में सम्मिलित तालाबों के साथ भी ऐसी समस्या थी किंतु प्रशासन के समर्थन एवं जनता की व्यापक भागीदारी के सामने असामाजिक तत्त्व हावी नहीं हो सके। शहर के इस अभियान के साथ ही मगध जल जमात के लोग अपने स्तर से कई कार्यक्रमों का

संचालन कर रहे हैं। दिसंबर २००६ में गया शहर के पंचायती अखाड़ा मुहल्ले के डायट परिसर स्थित तालाब की उड़ाही पूरी की गई और २५ जनवरी से ब्राह्मणी घाट स्थित एक लुप्त कुंड की उड़ाही शुरू है। नेहरु युवा केन्द्र की ओर से भी ननौक एवं पंचानपुर में श्रमदान के द्वारा पइन उड़ाही का कार्य किया गया।

श्री उपेन्द्र कुमार एवं मित्र मंडली के लोगों द्वारा वंशीनाला पाले पइन का कार्य इसी प्रकार का है। फर्क इतना ही है कि उसमें सरकारी काम के बदले अनाज योजना से मदद ली गई है। मगध जल जमात जिला एवं प्रमण्डल स्तर की गोष्ठियों में इन मुद्दों को मिलजुल कर उठाता है एवं समर्थन देता है।

गोष्ठियाँ एवं प्रकाशित साहित्य

जल जमात की ओर से छोटे पोस्टर, ४ फोल्डर हिन्दी, ३ फोल्डर ऊर्दू एवं ५ बड़े पोस्टर जुड़ाव के सहयोग से प्रकाशित किए गए गया शहर की पेयजल समस्या का "समाधान" नामक एक छोटी पत्रिका भी प्रकाशित की गई है। इसके पूर्व मगध की क्षेत्रीय जल नीति पुस्तिका का प्रकाशन गया डेयरी के सौजन्य से हुआ था।
जिला एवं प्रमंडल स्तरीय संगोष्ठियों के अतिरिक्त एक बड़ी संगोष्ठी रेनासांस सभागार में श्रीमती सुशीला दयानंद चेरिटेबुल ट्रस्ट के खर्चे से संपन्न हुई। एक गोष्ठी केन्द्रीय भू-जल बोर्ड के द्वारा भी रेडक्रास भवन में हुई जिसमें मगध जल जमात के लोगों की भागीदारी एवं समर्थन का कार्य हुआ। मगध क्षेत्र में जल संरक्षण हेतु उल्लेखनीय कार्य करने वाली संस्थाओं को सम्मानित करने एवं वार्षिक सम्मेलन का सिलसिला भी २००७ से शुरू हुआ है।

अध्याय पाँच : उपसंहार

नए शोध की आवश्यकता

मगध क्षेत्र के विषय में किए गए पुराने अध्ययनों में से अनेक अब अप्रासंगिक हो गए हैं। अतः अनेक मामलों में नए शोध एवं अध्ययन की आवश्यकता है ताकि पंचायती राज व्यवस्था की इकाइयाँ, स्वयं सेवी संगठन एवं सरकार की अन्य ऐजेंसियाँ भी योजना निर्धारण एवं क्रियान्वयन में इन जानकारियों का लाभ उठा सके। इन अध्ययनों में निम्न बातों की सघन जानकारी कम से कम प्रत्येक पंचायतवार होनी चाहिए -

१. जमीन की बनावट, भूगर्भ की बनावट एवं जलभृत (Aqifer) की स्थिति।

२. ढाल का औसत, सिंचाई के संसाधनों की स्थिति, सिंचित/गैर सिंचित क्षेत्र, सिंचाई संबंधी आवश्यकता, समस्याएँ तथा उनके समाधान हेतु अपेक्षित उपाय। जीर्णोद्धार एवं नया निर्माण।

३. पेयजल की उपलब्धता/गुणवत्ता, कमी एवं अपेक्षित उपाय।

४. सरकारी/गैरसरकारी तौर पर उलझी/विलंबित परियोजनाएँ।

५. किसानों की आर्थिक सामाजिक स्थिति।

वस्तुतः मगध क्षेत्र सिंचाई एवं पेयजल के मामले में न तो पूर्णतः संसाधनों से युक्त है न पूर्णतः संसाधनों से रहित। सोन नहर इलाके को छोड़ भी दें तब भी आहर-पइन, ट्यूबवेल जैसे संसाधनों के द्वारा सिंचित/असिंचित क्षेत्र के बारे में वास्तविक सूचना के आधार पर प्राथमिकता क्रम से निर्णय लेना जरूरी है। उदाहरण के लिए ४० हजार के एक ट्यूबवेल लगाने से जरूरी है कि आहर की उड़ाही एवं बाँध की मरम्मत की जाए आहर छोटा है तो उसे किसी पइन से जोड़ा जाए, जरूरत हो तो नई पइन बने। भूमिगत जल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो और जमीन बलसुंदरी हो तो आहर का निर्माण भी कारगर नहीं हो सकता। ऐसे में पइन एवं नलकूप का चयन ही सही उपाय है। आहर विहीन पइन से केवल झारखंड़ के जंगलों की वर्षा का ही लाभ हो सकता है। वहाँ भी वर्षा रुकने पर धान के सूखने का संकट उत्पन्न हो जा सकता है। मगध जल जमात ने सर्वेक्षण हेतु कई फार्म तैयार भी किए हैं।

द्वितीय बिहार राज्य सिंचाई आयोग के द्वारा किए गए अध्ययन एवं रिपोर्ट १९९४ की पुनः समीक्षा की आवश्यकता

वर्ष १९६७ में प्रथम बिहार राज्य सिंचाई आयोग का गठन किया गया था जिसे अपनी रिपोर्ट संस्तुतियों के साथ वर्ष १९७१ में प्राप्त हुई। लंबी अवधि के बाद पुनः वर्ष १९९१ में जल संसाधन विभाग के पत्रांक २६८ दिः १५.०२.१९९१ द्वारा द्वितीय बिहार राज्य सिंचाई

आयोग का गठन हुआ जिसने वर्ष १९९४ में अपनी रिपोर्ट एवं संस्तुतियाँ प्रस्तुत कीं। इस आयोग ने विशाल काम किया इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता फिर भी वर्तमान स्थिति की अपेक्षा यह है कि कम से कम तत्काल संकलित आंकड़ो के आधार पर ही सही नई रिपोर्ट एवं संस्तुतियाँ सरकार की ओर से तैयार करायी जाय क्योंकि इस बीच बिहार एवं झारखंड के बँटवारे के बाद नदियों, नालों एवं झरनों का मामला पेचीदा हो गया है। आज की तारीख में कोयल-कारो परियोजना, मोहाने परियोजना एवं अन्य, जिनका जल संग्रहण एवं डूब क्षेत्र झारखंड में है उन्हें यथावत् लागू करा पाना राज्य सरकार के वश में नहीं है। ऐसे में मिश्रित आंकड़ों की पूरी उपयोगिता नहीं है। चूँकि बिहार के क्षेत्रीय आंकड़े पूर्ववत् प्रासंगिक हैं और झारखंड क्षेत्र के जल पर भी बिहार का अधिकार शून्य नहीं हो जाता अतः यह आवश्यक है कि झारखंड स्रोत से जल प्राप्ति की कानूनसम्मत संभावना को ध्यान में रखकर पुनर्विचार किया जाय। ऐसा न करना अनेक विवादों को उत्पन्न करने वाला एवं जनता की कमाई को बरबाद करने वाला होगा।

झारखंड के साथ विस्तृत जल समझौता हो

झारखंड के जल स्रोत मध्य बिहार के लिए अपरिहार्य हैं। बड़ी, मंझोली एवं छोटी तीनों प्रकार की पारंपरिक एवं आधुनिक सिंचाई प्रणालियाँ झारखंड में होने वाली वर्षा पर बहुत हद तक निर्भर हैं, अतः होना तो यह चाहिए कि झारखंड से निकलने वाली नदियों एवं उनके जल के संदर्भ में एक विस्तृत जल समझौता हो जाए। झारखंड के पठारी भाग के जल का मध्य बिहार में और अंततः गंगा में आना प्राकृतिक रूप से अनिवार्य है, फिर भी सभी नदियों की स्थिति एक नहीं है। निरंजना, मोहाने, ढाढर, तिलैया, सकरी आदि की बात अलग है लेकिन कोयल का पानी उतना सहज नहीं है। वह तो सोन में गिरती है।

मगध जल जमात के भावी कार्यक्रम

जल संरक्षण हेतु समाज के विभिन्न समूहों के बीच चर्चा एवं भूमिका को सक्रिय करना, जैसे -

१. विभिन्न पूजा समितियों की गोष्ठी एवं मूर्तिविसर्जन के साथ तालाबों के गंदा हो के संबंध पर चर्चा।
२. पूजा से बची सामग्री फेंके जाने के मुद्दे पर पुरोहितों एवं धर्माचार्यों की बैठक।
३. अन्य तालाबों की मरम्मत तथा रक्षा के लिए आगे की योजना कार्यक्रम।
४. जल संरक्षण संबंधी साहित्य का प्रकाशन।
५. परंपरागत जल प्रणालियों के जीर्णोद्धार हेतु आह्वान एवं कमिटियों का गठन।
६. पर्चे-पोस्टरों का प्रकाशन तथा प्रचार-प्रसार।
७. सरकार तथा प्रशासन को परामर्श एवं उनसे आग्रह।
८. अन्य समानधर्मी अभियानों में सहभागिता तथा उनका समर्थन।
९. मगध की जल व्यवस्था नामक वृत्त चित्र को पुनः रूप देना।

परिशिष्ट 1. मगध क्षेत्र की जलनीति

जमीन एवं जल स्रोतों की स्थिति

- ''जल ही जीवन है'' यह उक्ति मगध क्षेत्र के लिए भी उतनी ही सच है जितनी दुनिया के अन्य क्षेत्रों के लिए मगध क्षेत्र से हमारा तात्पर्य उस भौगोलिक क्षेत्र से है जिसके उत्तर में गंगा नदी है और दक्षिण में झारखंड, पूर्व में क्यूल नदी है और पश्चिम में सोन नदी अर्थात संपूर्ण मगही भाषी क्षेत्र।

- भौगोलिक बनावट के लिहाज से मगध क्षेत्र की स्थिति काफी विविधतापूर्ण है। इसका दक्षिणी भाग पठारी है, जिसकी तीखी ढाल उत्तर, कहीं-कहीं पूर्वाभिमुख उत्तर की ओर है। उत्तरी भाग मैदानी है। इसकी ढाल भी इसी दिशा की ओर है, लेकिन ढाल कम (लगभग १.२५ मीटर प्रति किलोमीटर) है। उत्तरी भाग में ढाल नहीं के बराबर है। फलतः इस भाग की जमीन लगभग समतल है। पठारी इलाकों में लम्बी घाटियाँ हैं जो मैदान का आकार लिए हुए हैं। सोन एवं पुनपुन के द्वारा बनाया गया मैदान है। इसमें कहीं कम, तो कहीं अधिक गहराई में बालू है जो मुख्य जल स्रोत है। कहीं-कहीं यह जल प्रवाह ऊपर में भी है। यह स्थिति मुख्यतः औरंगाबाद, अरवल और पटना जिले में है।

- इस पूरे क्षेत्र में वर्षा जल का वार्षिक औसत १०० सेंटीमीटर है लेकिन तीखी ढाल के कारण पठारी क्षेत्र में जल का संग्रह कठिन हो जाता है। मगध के पठारी क्षेत्र के लोक जीवन पर इस भौगोलिक बनावट का गहरा असर है। फलतः मक्का, अरहर आदि भदई फसलें यहाँ की प्रमुख फसलें हैं। जहाँ पानी रोकना संभव है, वहाँ धान की खेती भी कहीं-कहीं होती है। उत्पादन की कमी के कारण यहाँ आबादी विरल है। दूसरी ओर इस क्षेत्र के वर्षा जल का उपयोग बीच के मैदानी भागों में पइन-आहर की व्यवस्था के जरिए लंबे समय से हो रहा है। जल निकासी की पर्याप्त गुंजाइश नहीं होने के कारण मगध क्षेत्र का उत्तरी भाग बरसात और उसके बाद के दो-एक महीनों तक डूब क्षेत्र में तब्दील हो जाता है और रबी की फसल ही मुख्य रूप से हो पाती है। इस प्रकार क्षेत्र का मध्यवर्ती भाग ही धान और रबी दोनों फसलों का भरपूर लाभ ले पाता है। तीन साल बाद प्रायः सुखाड़ की आवृत्ति होने लगी है।

समस्या

- क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति के अनुरूप जल व्यवस्था मगध क्षेत्र में लम्बे समय तक कायम रही। किन्तु अनेक कारकों के प्रभाववश अब यहाँ की जल-व्यवस्था काफी हद तक छिन्न-भिन्न हो गई है।

- इनमें से एक महत्त्वपूर्ण कारक राजनीतिक परिवर्तन के फलस्वरूप भूमि संबंधों तथा सामाजिक स्थिति में आया परिवर्तन है। स्वतंत्रता के पूर्व जमीन से लगान वसूली की जिम्मेवारी जमींदारों की थी। जमीन का बड़ा हिस्सा भी उन्हीं के अधिकार में था। फलस्वरूप सुनिश्चित फसल के लिए सिंचाई हेतु जल की व्यवस्था भी उन्हीं की जिम्मेवारी थी। वे यह काम अपनी रैयतों से प्रायः बलपूर्वक करवाते थे, फिर भी पहलकदमी तो उनके हाथ में रहती ही थी लेकिन आजादी, और खासकर जमींदारी प्रथा की समाप्ति के बाद जनता ने इसे सरकार की जिम्मेवारी मान ली, जिसके कर्मचारियों-पदाधिकारियों की रुचि इस काम में अपवादस्वरूप ही रहती है। अनेक स्थानों पर बाहुबलियों ने आहर-तालाब की जमीन को हड़प लिया। जल के मुद्दे पर ऐसी चिंता नहीं उभरी कि पानी हर आदमी के लिए सुलभ हो। पानी की व्यवस्था के प्रयास नितांत सीमित स्तर पर हुए।

- वैज्ञानिक प्रगति जल व्यवस्था के विनाश का दूसरा महत्त्वपूर्ण कारक है। स्वतंत्रता प्राप्ति के अनेक वर्षो बाद तक भी इस क्षेत्र में भूमिगत जल का उपयोग कृषि कार्य में अपवादस्वरूप ही हो पाता था। रहट के उपयोग के साथ (पशु शक्ति के उपयोग के कारण) इसमें थोड़ी वृद्धि तो हुई लेकिन अपनी सीमित क्षमता के कारण इसने जलसंकट पैदा नहीं किया। जलसंकट में उल्लेखनीय वृद्धि बिजली तथा डीजल-पेट्रोल चालित पम्पसेटों के कारण हुई। नलकूपों के निर्माण-विकास ने इसकी गति को काफी तेज कर दिया। अत्यधिक बोरिंग के कारण पूरे मगध क्षेत्र में भूगर्भीय जल का स्तर तेजी से गिरा है। इससे भूगर्भीय जल का दोहन क्रमशः अधिक महँगा होता गया है और अनेक क्षेत्रों में तो भीषण पेयजल की कमी एवं सुखाड़ का संकट उपस्थित हो गया है।

- वनों, बागीचों तथा वृक्षों के अनियंत्रित कटाव ने भी जल संकट में काफी वृद्धि की। इसके फलस्वरूप मिट्टी का कटाव बढ़ा, वर्षा जल के रुकने तथा भूगर्भ तक पहुँचने की क्रिया बाधित हुई और बाढ़/जलजमाव को बढ़ावा मिला।

- अव्यवस्थित शहरीकरण तथा गैरजिम्मेवार औद्योगीकरण ने जलसंकट में दोतरफा वृद्धि की है। एक तो जल के प्रयोग में फिजूलखर्ची के फलस्वरूप भूगर्भीय एवं अन्य जलस्रोतों का क्षमता से अधिक दोहन हुआ, दूसरे जल-मल निकासी की अनियंत्रित एवं अपर्याप्त व्यवस्था के चलते प्रदूषण भयानक ढंग से बढ़ा। रासायनिक दवाओं के अधिक प्रयोग एवं गोबर जैसे मिट्टी कणों के प्राकृतिक संयोजकों के प्रयोग की कमी से मिट्टी के कणों के बीच जल धारण की क्षमता तेजी से घट रही है।

- जलस्रोतों के प्रदूषण में वृद्धि कृषि क्षेत्र में रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों के इस्तेमाल के कारण भी हुई है। अनेक प्रदूषणकारी तत्वों का घरों में भी उपयोग बढ़ा है। इनमें डिटर्जेंट का प्रमुख स्थान है जो साबुन-सोडा से बहुत घातक है।

- अनेक स्थानों का भूगर्भीय जल प्राकृतिक रूप से ही, फ्लोरीन, आर्सेनिक आदि

जहरीले पदार्थों से युक्त है। हैंडपंपों तथा नलकूपों द्वारा इसके कृषि, पेयजल तथा घरेलू कार्या के लिए उपयोग ने स्थानीय आबादी में अनेक भयानक रोगों को जन्म दिया है। गंगा के किनारे के भूगर्भ जलस्रोतों (जलमृत) में लोहा एवं आर्सेनिक (शंखिया) की मात्रा अधिक पाई जाती है।

- उपरोक्त तमाम परिस्थतियों के फलस्वरूप मगध क्षेत्र में जल संबंधी अव्यवस्था और उनके दुष्परिणाम जनता को गहरे संकट की ओर ले जा रहे हैं। यह स्थिति क्षेत्र की जनता के हित में एक उपयुक्त जलनीति की माँग करती है।

- समस्त जलस्रोतों को तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है – आकाशीय अर्थात वर्षा जल, भूपृष्ठीय जल तथा भूगर्भीय जल। इनमें आकाशीय जल सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि शेष दो प्रकार के जल का प्राथमिक स्रोत यही है।

- चूँकि आकाशीय जल की स्थिति में हस्तक्षेप करना (यथा : बारिश रोकना या बरसाना) किसी व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह के लिए आम तौर पर संभव नहीं है। इसीलिए इस विषय को लेकर व्यक्ति अथवा व्यक्तिसमूहों में तनाव भी आम तौर पर नहीं होता है। तनाव होता है, शेष दो स्रोतों को लेकर, जिनपर व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूहों के जरिए काफी हद तक नियंत्रण संभव है।

- एक ही रंग एवं स्वाद वाला वर्षा जल जब पृथ्वी के संपर्क में आता है तो उसके संपर्क से वह उसी के रंग, स्वाद तथा स्वभाव वाला हो जाता है (वराहमिहिर)। इसी के साथ शुरू होता है जल की क्षेत्रीय पहचान तथा उसके संचय, भंडारण तथा प्रवाह पर नियंत्रण के साथ-साथ उस पर वर्चस्व स्थापित करने का प्रयास ।

समाधान हेतु उपयुक्त जल नीति

- चूँकि जल का स्वभाव ही स्थलाकृति के अनुरूप अपना आकार बदल लेना तथा ऊपर से नीचे की ओर बहना है इसलिए उसके स्वभाव के विपरीत उसपर नियंत्रण कायम करना आंशिक तौर पर ही संभव हो पाता है। ऐसी स्थिति में वर्चस्वशाली व्यक्ति अथवा समूह जल पर इस प्रकार नियंत्रण स्थापित करते हैं कि उसका लाभ तो उन्हें मिले लेकिन नुकसान दूसरों को झेलना पड़े। उदाहरणस्वरूप जलस्रोत के समीप ऊपर की ओर रहने वाले लोग पानी की कमी के दिनों में तो उसका अधिकाधिक उपयोग खुद कर लेते हैं लेकिन बाढ़ की स्थिति में पानी नीचे छोड़ देते हैं।

- ऐसी स्थिति पूरी तरह अनैतिक है और सामाजिक तनाव को जन्म देती है। इसका सर्वोत्तम उपाय पानी के उपयोग की ऐसी व्यवस्था करना है, जिससे प्रवहमान जलस्रोत को कम से कम बाधित किया जाय और ऊपरी क्षेत्र के लोग उसका आवश्यकतानुसार उपयोग भी कर लें। जल के दुरुपयोग को हतोत्साहित किया जाना चाहिए और दुरुपयोग करने वालों के खिलाफ दंड की व्यवस्था की जानी चाहिए

- पइन इस क्षेत्र में प्रवहमान जल के सदुपयोग की सर्वोतम उदाहरण हैं। अधिकांश पइनें नदी-नालों में बाढ़ आने की स्थिति में चालू होती हैं और बाढ़ समाप्त होने पर बंद हो जाती हैं। इससे ऊपरी क्षेत्र के लोगों को अतिरिक्त जल का लाभ मिल जाता है और निचले क्षेत्र के लोग उसके नुकसान से बच जाते हैं। इस अतिरिक्त जल को आहरों में संचित करके सुविधा के अनुरूप उसका उपयोग इस क्षेत्र के लोग लंबे समय से करते आ रहे हैं। इसे जारी ही नहीं रखा जाना चाहिए, अधिकाधिक प्रोत्साहित भी किया जाना चाहिए।

- अनेक पइनों के मुहाने अपने उद्गमस्थल पर स्थित नदी-नालों की तली से ऊँचे होते हैं। ऐसी स्थिति में जलस्तर को ऊँचा उठाने के लिए मुहाने के ठीक नीचे बहाव में अवरोध पैदा करना आवश्यक हो जाता है। यह स्थिति उपरोक्त उदाहरण जितनी अच्छी तो नहीं है लेकिन इन पइनों का चालू रहना भी उनके द्वारा लाभान्वित होने वाले लोगों के लिहाज से आवश्यक है। इस स्थिति में नदी-नाले में ऐसा अवरोध खड़ा किया जाना चाहिए जो उसके प्रवाह को आंशिक व अस्थायी तौर पर ही रोके।

- स्थायी बाँध वाली पइनें और नहरें प्रवहमान भूपृष्ठीय जल के सिंचाई हेतु उपयोग के बुरे उदाहरण हैं तथापि इनका निर्माण अगर हो चुका है तो उनमें जलप्रवाह जारी रखते हुए भी ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि उससे नीचे स्थित लोगों को भी पानी नियमित रूप से मिलता रहे,साथ ही गाद की सफाई भी होती रहे।

- अतिरिक्त जल को नदी में वापस करने वाली निकासी पइनों के निर्माण को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

- प्रायः सभी नदियों का अपना स्वनिर्मित जलक्षेत्र तथा ढाल क्षेत्र होता है जो सरितानिर्माण की भौगोलिक प्रक्रिया से विकसित होता है। छोटी नदियाँ बड़ी नदियों में जल छोड़ती हैं। वह जल समुद्र तक जाता है। अतः किसी नदी के जल का प्रयोग उस नदी की घाटी के साथ उस नदी के जल को ग्रहण करनेवाली बड़ी नदी घाटी अथवा उसके आसपास के मैदान में होना चाहिए इसके लिए ढाल का सिद्धांत प्राकृतिक रूप से अनुकूल ही नहीं, सुस्पष्ट तथा परंपरा से पोषित भी है। ढाल के विपरीत कृत्रिम उपाय अनेक जटिलताओं को पैदा करते हैं।

- छोटे नदी-नाले पर भी यथासंभव यही नियम लागू किया जाना चाहिए। ऐसे नदी-नालों का अतिरिक्त जल कई बार डूब क्षेत्र को जन्म देता है। मगध में पटना के आसपास का जल्ला क्षेत्र तथा मोकामा-बड़हिया टाल इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। ऐसे क्षेत्रों में जलजमाव से मुक्ति के बजाय बड़े-बड़े तालाब बनाकर उसमें पानी को लंबे दिनों तक संग्रहित करने तथा उनमें मछली, महाझींगा तथा अन्य जलजीवों-जलोद्भिजों का उत्पादन करना लाभप्रद होगा।

- जिन स्थानों पर प्रवहमान जल (नदी-नालों) का नियमित रूप से पहुँच पाना संभव

नहीं होता वहाँ आहर-तालाब आदि के जरिए जल के संग्रह की व्यवस्था की जाती है। यह प्रकृति के अनुकूल है। पेड़-पौधे, चट्टानें, पहाड़, ऊँची जमीन आदि द्वारा जल के प्रवाह में कदम-कदम पर बाधा खड़ी की जाती है और उसे अपनी राह बदलने के लिए मजबूर किया जाता है। छोटे-छोटे गड्ढ़ों से लेकर बड़ी-बड़ी झीलों तक में प्रवहमान जल संग्रहित होता भी है। लेकिन इन प्राकृतिक जल संग्रह स्थलों का आधार इनके आकार के अनुरूप अधिकाधिक दृढ़ तथा स्थायी होता है। इसके विपरीत की स्थिति प्रायः विनाशकारी होती है। इसे ध्यान में रखते हुए जलसंग्रह की कृत्रिम संरचनाओं का आकार छोटा होना ही श्रेयस्कर है।

- नदियों-नालों के जलग्रहण क्षेत्र में भी चेक डैम के निर्माण को तो प्रोत्साहित किया जाना चाहिए लेकिन उनका आकार ऐसा नहीं होना चाहिए कि उनके टूट जाने पर संबंधित नदी-नालों का जलस्तर सामान्य से दो फीट से ज्यादा ऊँचा उठे और वह भी पाँच-छः घंटों तक ही हो। इससे विनाश का संकट नहीं रहेगा।

- जल संग्रह की ऐसी संरचनाओं के जलग्रहण क्षेत्र में प्रायः ऐसी फसलों की खेती की जाती रही है जिन्हें पानी की कम जरूरत होती है। फलतः अधिशेष जल नीचे स्थित जल-संगह संरचना में संग्रहित हो जाता है। स्वार्थ तथा नासमझीवश अनेक क्षेत्रों में इस व्यवस्था को तोड़ा जा रहा है। ऐसी प्रवृत्ति को हतोत्साहित किया जाना चाहिए।

- इसी प्रकार की नासमझी ढेर सारे लोग आहर, टाल आदि जलसंग्रह संरचना के डूब क्षेत्र में फसल उगाकर कर रहे हैं। ऐसे लोग पानी के अधिक संग्रह का विरोध करते हैं ऐसी प्रवृत्ति का भी विरोध किया जाना चाहिए ।

- संग्रहित जल का ऊपरी तल हमेशा एक होता है। उसे नीचे तो आसानी से किया जा सकता है लेकिन ऊपर उठाना कठिन है। इसे ध्यान में रखकर सिंचाई का प्राथमिकता क्रम क्रमशः ऊँचे से निचले खेतों की ओर होना चाहिए। लेकिन प्रवाह को पूर्णतः अवरूद्ध करना न्यायोचित नहीं है।

- सिंचाई के मामले में परंपरा से यह व्यवस्था रही है कि जो लोग सार्वजनिक स्रोत से अपने खेत के लिए पानी ला रहे हैं उन्हें अपने नीचे के खेतों में पानी जाने के लिए जगह देनी होगी। इसे अवश्य जारी रखा जाना चाहिए। इसे धार एवं निकास का सिद्धांत कहा जाता है।

- आहर जैसे जलभंडार को एक निश्चित तिथि को (यथा कार्तिक पूर्णिमा) खाली कर देने की व्यवस्था परंपरा से प्रचलन में रही है ताकि जलभंडार स्थित खेत के मालिक उसमें रबी फसल, लगा सकें। इसके स्थान पर पानी को अधिक दिनों तक संग्रहित किया जा सकता है बशर्ते डूब क्षेत्र में स्थित खेत के मालिकों के लिए प्रर्याप्त क्षतिपूर्ति की व्यवस्था की जाए मछली पालन अथवा सिंघाड़ा (पानीफल) जैसी डूब क्षेत्र आधारित फसल उगाने का अधिकार देने के रूप में भी उनके लिए क्षतिपूर्ति की व्यवस्था संभव है।

- वाष्पीकरण जलभंडारों में भंडारित जल के ह्रास का एक प्रमुख जरिया है। इनमें

कमी लाने के लिए जलभंडारों को गहरा बनाया जाना चाहिए। छिछले व फैले जलभंडारों से वाष्पीकरण अधिक होता है।

- नहर-पइन जैसी प्रवहमान जलापूर्ति व्यवस्थाएँ तथा आहर-पोखर जैसे जल भंडार नियमित देखरेख की माँग करते हैं। इनकी हर साल सफाई-उड़ाही तथा टूट-फूट की तत्काल मरम्मत आवश्यक होती है। इस हेतु परंपरा से 'गोवाम' तथा 'गोहार' की व्यवस्था रही है। लेकिन सरकार पर निर्भरता के कारण इसमें क्रमशः ह्रास होता गया है। जनता को चाहिए कि वह पहलकदमी अपने हाथ में ले और इस व्यवस्था को मज़बूत करे 'गोवाम' के आह्वान के लिए गाँवों द्वारा अपने प्रतिनिधि का चुनाव किया जाना चाहिए 'गोहार' चूँकि आपातकालीन व्यवस्था है इसलिए इसके आह्वान का हक सभी का होना चाहिए।

- अनेक स्थानों पर आहर-पइन की जमीन की सरकार द्वारा व्यक्तिगत बंदोबस्ती कर दी गई है। अनेक स्थानों पर इनपर लोगों द्वारा अवैध कब्जा कर लिया गया है। ऐसी जमीनों की बंदोवस्ती तत्काल रद्द कराई जानी चाहिए और उन्हें अवैध कब्जे से मुक्त कराया जाना चाहिए ।

- भूपृष्ठीय जलस्रोतों के प्रति उदासीनता-उपेक्षा का एक बड़ा कारण भूगर्भीय जलस्रोतों का बढ़ता उपयोग है। जानकार लोगों को चाहिए कि वे आम लोगों के दिमाग में यह बात बिठाने का लगातार प्रयास करें कि भूगर्भीय जल भूपृष्ठीय जल का बहुत महँगा और उपयोग से लगातार कम होते जाने वाला विकल्प है। इसीलिए इसका उपयोग बहुत सोच-समझ कर किए जाने की जरूरत है। इसका अनियंत्रित उपयोग दीर्घकालिक हितों के सर्वथा प्रतिकूल है।

- तथापि भूमिगत जल के दोहन पर पूरी तरह रोक लगा पाना संभव नहीं है। इस स्थिति में भूगर्भीय जल का उपयोग इस प्रकार से और उसी सीमा तक होना चाहिए कि जल का स्तर नहीं गिरे। अगर भूगर्भीय जल का स्तर गिरता है तो ऐसे इलाके में भूगर्भीय जल के दोहन पर तत्काल नियंत्रणकारी व्यवस्था लागू की जानी और उसके उपयोग को प्राथमिकता के आधार पर सीमित किया जाना चाहिए।

- भूगर्भीय जल समेत समस्त जलस्रोतों के उपयोग का प्राथमिकता क्रम इस प्रकार होगा- खाना-पीना, नहाना-धोना, साफ-सफाई, गैर-औद्योगिक खेती तथा पशुपालन, उद्योग, पानी आधारित उद्योग।

- भूगर्भीय जल का पुनः संभरण (Recharge) उसके उपयोग की अनिवार्य शर्त होनी चाहिए अर्थात्, जो व्यक्ति अथवा संस्थान भूगर्भीय जल का जितना उपयोग अपने कार्यों में करता है, उसे कम से कम उतने जल का पुनः संभरण करना होगा अथवा समुचित

मुआवजा देना होगा। सक्षम अभिकरण द्वारा इस राशि का उपयोग भूगर्भीय जल के पुनः संभरण तथा अन्य स्थायी विकल्पों के निर्माण में ही होना चाहिए अन्य जलस्रोतों के व्यावसायिक उपयोग पर भी इसी तरह से मुआवजा लिया जाना चाहिए। इसके लिए सरकार के स्तर पर अथॉरिटी बनाई जा सकती है।

- किसी भी व्यक्ति अथवा संस्थान के द्वारा जल के उपयोग की सीमा तय की जानी और उसका अतिक्रमण करने पर उसे दंडित करने का प्रावधान किया जाना चाहिए। प्राथमिकता क्रम के उल्लंघन पर अवश्य दंडित किया जाना चाहिए।

- भूगर्भीय जल के उपयोग के मामले में एक बड़ा खतरा उसके प्रदूषित होने पर उससे होने वाले नुकसान का है। ऐसा प्रदूषण प्राकृतिक भी हो सकता है और मानवजनित भी। जैसे - जल में आर्सेनिक, फ्लोरीन अथवा अन्य खनिजों की या कीटनाशकों, रसायनों आदि की घातक मात्रा मौजूद हो सकती है। अतएव किसी भी नए जलस्रोत के उपयोग के पूर्व उसके जल का वैज्ञानिक परीक्षण कराया जाना चाहिए। पुराने जलस्रोतों का भी समय-समय पर परीक्षण कराया जाना चाहिए।

- जलस्रोतों के प्रदूषण का सबसे बड़ा कारण अनियंत्रित औद्योगीकरण तथा योजनाविहीन शहरीकरण है। इनसे भारी मात्रा में प्रदूषित जल निकलता है और जलस्रोतों में मिल जाता है। जलस्रोतों में इनके मिलने के पूर्व इनका शुद्धिकरण अनिवार्य किया जाना चाहिए और उसका खर्च संबंधित इकाइयों द्वारा ही वहन किया जाना चाहिए। इसकी अवहेलना करने वालों के लिए दंडकारी प्रावधान होने चाहिए। भूगर्भीय जल के संभरण हेतु शहरी मकानों के नक्शे पास होने के समय उसमें खुली जमीन एवं सोख्ता गडढ़ा बनाना अनिवार्य होना चाहिए। इस गड्ढे में वर्षा जल को डालने हेतु प्रेरणा/प्रोत्साहन होना चाहिए।

- शहरी एवं ग्रामीण दोनों स्तरों पर घरेलू व्यर्थजल के शुद्धिकरण का सबसे प्रभावी उपाय उन्हें सोख्ता गड्ढों में डालना है। इससे प्रदूषण से भी मुक्ति मिलती है और भूगर्भीय जल का पुनः संभरण भी होता है। अतएव घर-घर में इसके उपयोग को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए घनी तथा गरीब बस्तियों में सामुदायिक सोख्तों का निर्माण किया जाना चाहिए।

- देहाती लोगों की अपेक्षा शहरी लोग जल का उपयोग-दुरुपयोग अधिक करते हैं। इन्हें जल के कम उपयोग वाले उपकरण तथा विधियाँ अपनाने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। बागवानी का शौक रखने वाले लोगों को पौधों की सिंचाई के लिए स्वच्छ जल के बजाय घरेलू व्यर्थ जल का प्रयोग हेतु प्रेरित किया जाना चाहिए।

- प्लास्टिक भूगर्भीय जल के पुनः संभरण में एक बड़ी बाधा के रूप में उभरा है। अतएव प्लास्टिक मिट्टी युक्त या कचरे का उपयोग खुली जगहों के भराव में नहीं किया

जाना चाहिए। जलस्रोतों में प्लास्टिक व इसकी थैलियाँ डालना दंडनीय घोषित किया जाना चाहिए।

- मगध क्षेत्र के अनेक इलाके पेयजल का गंभीर संकट झेल रहे हैं। ऐसे इलाकों में वर्षा जल के संग्रह को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, आहर-पोखर आदि जलभंडारों में पानी को अधिकाधिक दिनों तक सुरक्षित रखना चाहिए तथा गरमा फसलों को पूर्णतः प्रतिबंधित किया जाना चाहिए, जब तक कि उस क्षेत्र के जल स्तर में पर्याप्त सुधार न आ जाए।

- लगभग सभी शहरों में जलसंकट अधिकाधिक गंभीर होता जा रहा है। ऐसे स्थानों पर घर-घर में वर्षा जल को छत पर इकट्ठा करने और बड़े-बड़े पक्के हॉज बनाकर संग्रहित करने के लिए सबको प्रेरित किया जाना चाहिए। खारे भूगर्भीय जल वाले क्षेत्रों में तो यह पेयजल का भी (शुद्धिकरण के पश्चात्) अच्छा विकल्प साबित होगा।

- जिन शहरों के संमीप कोई पहाड़-पहाड़ी हो, वहाँ पहाड़ पर ही वर्षा जल का संग्रह तालाब या झील के रूप में किया जाना चाहिए। इससे समीपस्थ क्षेत्रों में जलापूर्ति तथा भूगर्भीय जल का स्तर बनाए रखने में मदद मिलेगी।

- न तो प्राकृतिक जल बिक्री योग्य संपत्ति है न प्राकृतिक जलस्रोत। उन्हें बिक्री योग्य घोषित करना आम जनता के जीने के अधिकार का स्पष्ट हनन है।

वृक्ष वर्षा जल को आकर्षित करने, भूपृष्ठीय जल के प्रवाह को नियंत्रित करने तथा भूगर्भीय जल का पुनः संभरण करने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। अतः हर व्यक्ति को प्रेरित किया जाना चाहिए कि वह हवा के लिए एक तथा पानी के लिए पाँच वृक्ष अवश्य लगाए।

जाहिर है, इतने सारे नियम-नीतियों, इतने सारे प्रावधानों का अनुपालन-अनुरक्षण किसी व्यक्ति अथवा छोटे समूह के स्तर पर संभव नहीं है।

इसके लिए समाज को पहलकदमी अपने हाथ में लेना होगा। इसके लिए अपने स्तर पर संभव कार्य समाज को खुद करना होगा, सबके अधिकारों-कर्तव्यों का निर्धारण करना होगा, सरकार तथा स्थानीय निकायों से सहयोग करना होगा, उनके गलत कदमों का विरोध करना होगा तथा आवश्यक नए नियम-कानूनों के निर्माण के लिए उनपर दबाव बनाना होगा।

स्पष्ट है कि यह लक्ष्य आसान नहीं है लेकिन संगठित शक्ति के लिए कुछ असंभव भी नहीं है। आइए मिलकर जोर लगाएँ।

परिशिष्ट 2

मध्य बिहार के शहरों में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन अपेक्षित जल

पटना	–	१४० ली.
गया	–	१२० ली.
नवादा	–	१२० ली.
अन्य शहर	–	१०० ली.
गाँव/देहात	–	७० ली.

मध्य बिहार में सिंचाई हेतु अपेक्षित जल की मात्रा एवं स्रोत

	खरीफ	रबी	गर्मी	कुल
बड़ी एवं मंझोली योजना से	८८३७	३१०६	१००७	१२,६५३
लघु योजनाओं से	२२३१	२२६	.....	२४५७
भूगर्भ जल से	३२१७	१६६२	१२७२	६४५१
कुल	१४,२८५	५२६७	२२७६	२१,८६१

सोन नदी पर बना इन्द्रपुरी बैराज का पश्चिमी भाग
जहाँ से मगध की नहरें निकली हैं।

सोन नहर

लघु सिंचाई योजना के अंतर्गत फल्गु नदी पर बना घोड़ा घाट बैराज

दोन, करेन आदि नामों से परिचित

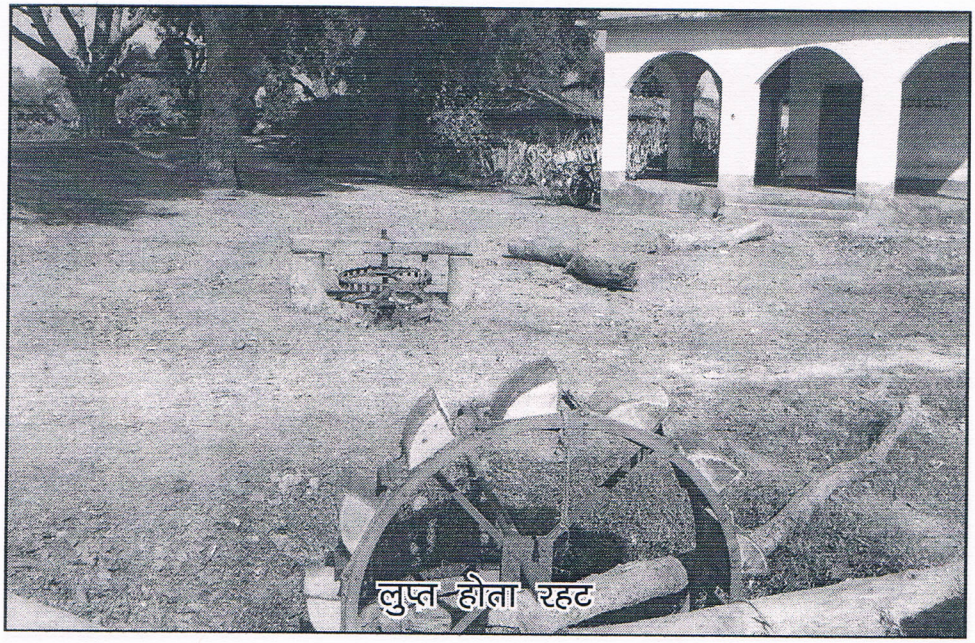

लुप्त होता रहट

सरयू तालाब उड़ाही में जुटे मगध जल जमात के कार्यकर्ता एवं
तत्कालीन जिलाधिकारी श्री संदीप पौंडरीक

सरयू तालाब उड़ाही के बाद

बिरनिया चुआँ गया की उड़ाही

सिगरा स्थान में उड़ाही करते ए.एस.सी सेंटर, गया के फौजी

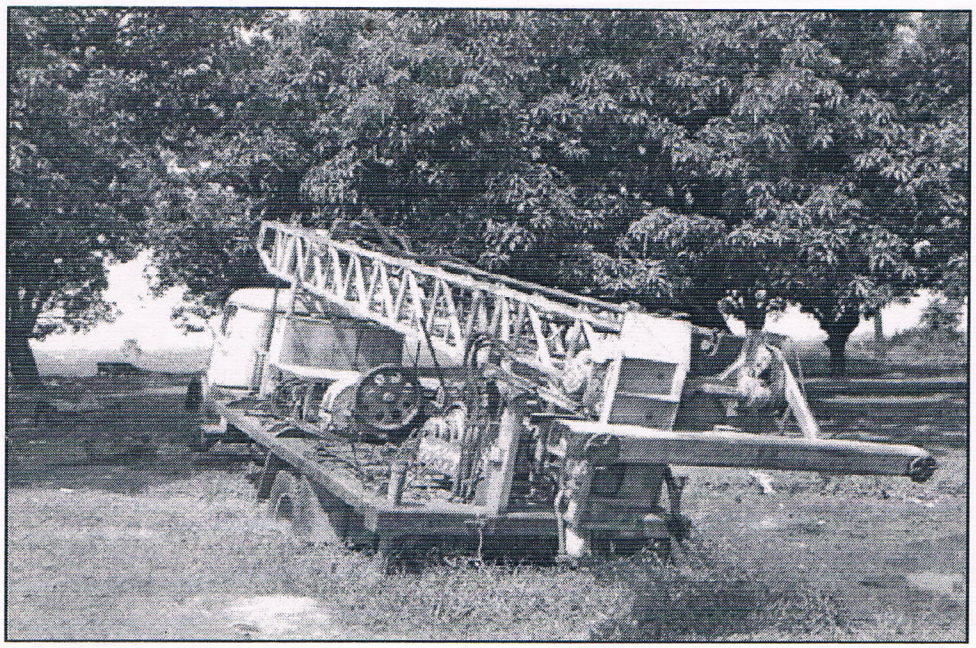

श्रमदान का अल्प विराम समारोह

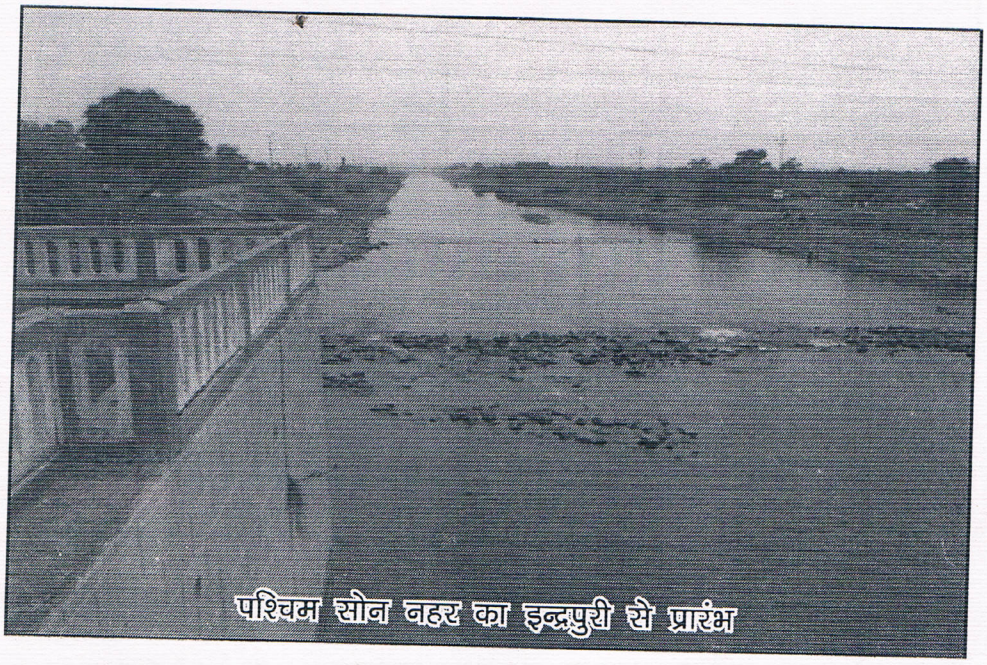

पश्चिम सोन नहर का इन्द्रपुरी से प्रारंभ

नेहरू युवा केन्द्र संगठन एवं युएनएड्स की संयुक्त परियोजना

''एच. आई. वी. एवं अन्य यौन संक्रमण के विरूद्ध ग्रामीण युवाओं का सशक्तीकरण एवं युवा नेतृत्व का विकास'' द्वारा जनचेतना एवं समृद्धि के लिए प्रकाशित

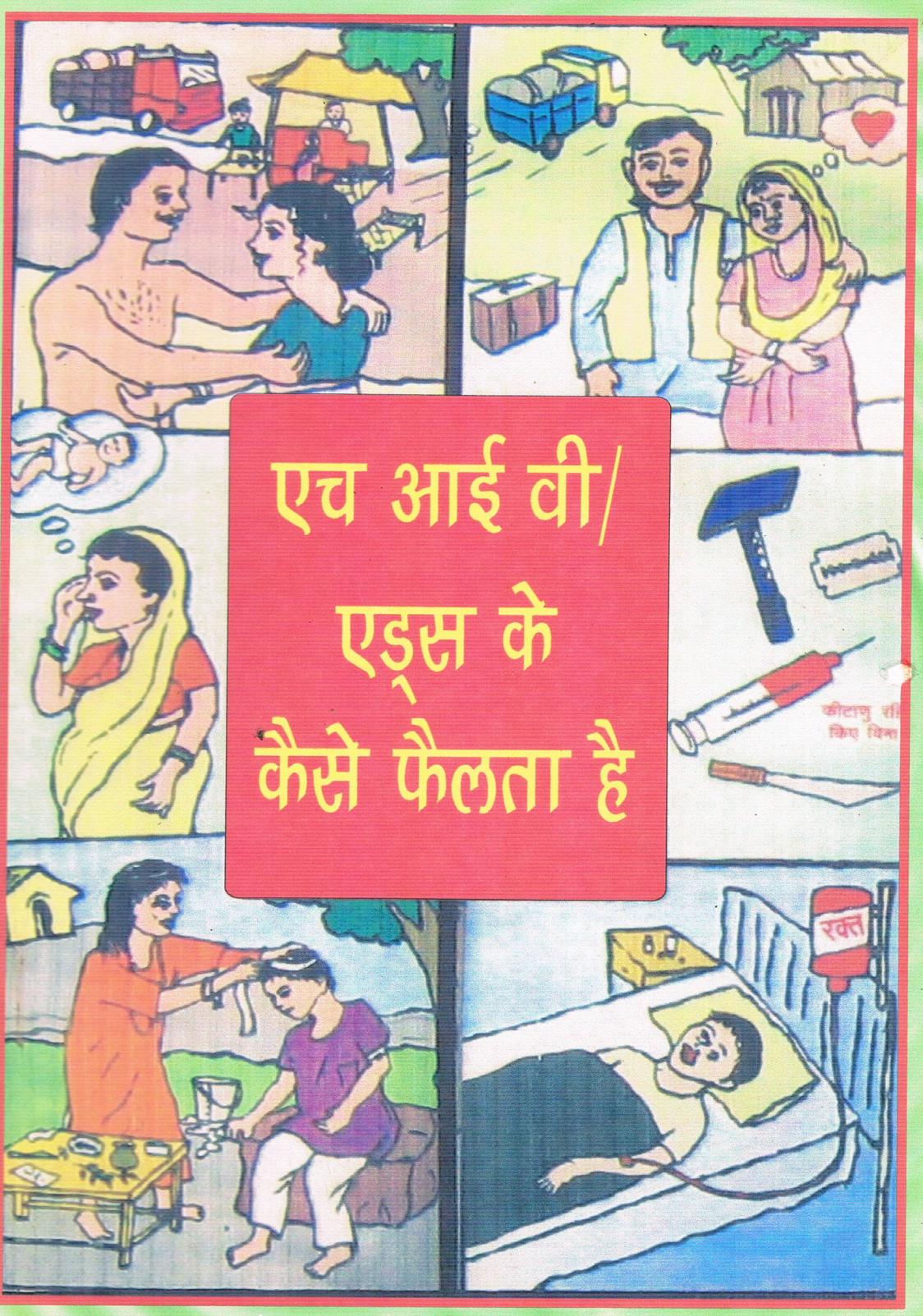

नेहरू युवा केन्द्र संगठन एवं यु.एन.एड्स की संयुक्त परियोजना

" एच.आई.वी. एवं अन्य यौन संक्रमण के विरूद्ध ग्रामीण युवाओं का सशक्तिकरण एवं युवा नेतृत्व का विकास " द्वारा जनचेतना एवं समृद्धि के लिए प्रकाशित

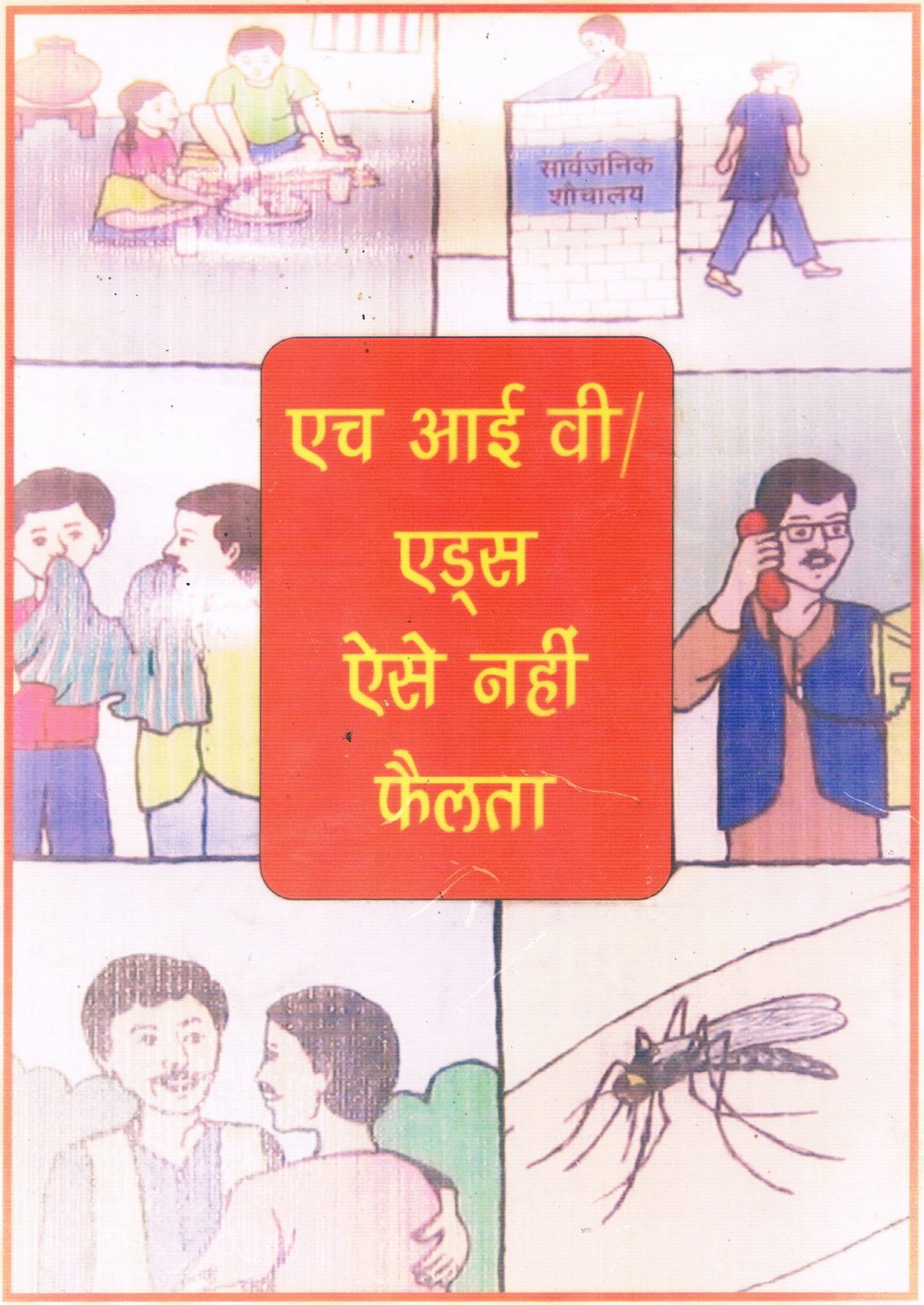

एच आई वी/ एड्स ऐसे नहीं फैलता

नेहरू युवा केन्द्र संगठन एवं यु.एन.एड्स की संयुक्त परियोजना

" एच आई वी एवं अन्य यौन संक्रमण के विरूद्ध ग्रामीण युवाओं का सशक्तिकरण एवं युवा नेतृत्व का विकास " द्वारा जनचेतना एवं समृद्धि के लिए प्रकाशित